मन के मोती

रचयिता

पुरोहित श्रीप्रतापनारायण

लेखक

"नल-नरेश" सुप्रसिद्ध महाकाव्य और

"काव्य-कानन" के कर्त्ता महाकवि

पुरोहित श्रीप्रतापनारायण, ताज़ीमी

सरदार, सिंवार हाउस

जयपुर सिटी, राजपूताना।
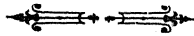
प्रथमवार १००० | मुद्रक:— प्रेमप्रकाश प्रेस जयपुर | मूल्य ६ आना

शुद्धि-पत्र

पृष्ट	पंक्ति	शुद्ध
२	११	संकलन
४	९	भी
१३	९	अपने
२२	३	निवासस्थान
२५	८	भरती के आगे है और है
३३	१३	एक से को हटादो
४२	३	घातक
६०	१०	पद्मनिपति
६६	१८	तीच्ण

विषय-सूची

सुकवि—सम्राट डाक्टर श्रीरवीन्द्रनाथ ठाकुर

सादर समर्पण

स्वीकृति प्रदान करके

अपनी उदार प्रकृति का परिचय देने वाले

और भारत के भव्य भाल को समस्त

साहित्य-संसार में ऊंचा उठाने वाले,

विश्व–विख्यात सुकवि–सम्राट्

डाक्टर श्रीरवीन्द्रनाथ ठाकुर को

'मन के मोती'

श्रद्धा-भक्ति-सहित सादर

समर्पित है।

भूमिका

'मन के मोती' के प्रणेता जयपुर-निवासी लब्धप्रतिष्ठ पुरोहित श्रीप्रतापनारायणजी, ताज़ीमी सरदार हैं। पुरोहित जी प्रतिभाशाली विद्वान हैं आपकी रचनाएं मनो-रञ्जक होने के साथ-साथ शिक्षा और देश-प्रेम-गर्भित होती हैं। इसके सिवा पुरोहितजी नव युवक होते हुए भी श्रृङ्गार-रस का वर्णन मर्यादित करते हैं। इसके प्रथम आपके दो श्रेष्ठ ग्रंथ, 'नल-नरेश' महाकाव्य और 'काव्य कानन, हिन्दी-साहित्य-संसार में प्रसिद्धि पा चुके हैं। इन दोनों ग्रंथों में पुरोहित जी की कल्पना-शक्ति का पर्याप्त परिचय प्राप्त होता है।

'नल-नरेश' में पुण्यश्लोक राजा नल और दमयन्ती का चरित्र-वर्णन है। राजा नल के चरित्र को महाकवि श्रीहर्ष ने संस्कृत में 'नैषध-चरित' नामक महाकाव्य में वर्णन किया है। श्रीहर्ष के नैषध-चरित की संस्कृत के सुप्रसिद्ध बृहत्रयी महाकाव्यों में गणना है। श्रीहर्ष के नैषध-चरित और पुरोहित जी के नल-नरेश दोनों का ही आधार महाभारत में वर्णित नलोपाख्यान है; किन्तु पुरोहितजी ने संस्कृत के नैषध-चरित को अपने नल-नरेश का आधार नहीं रखकर स्वतंत्र रचना की है। श्रीहर्ष के नैषध-चरित के साथ नल-नरेश की तुलनात्मक विवेचना करना अनुप-

युक्त है क्योंकि वह संस्कृत–साहित्य के सुप्रसिद्ध महाकाव्यों में भी अपना विशेष स्थान प्राप्त कर चुका है। फिर भी नल-नरेश की यह विशेषता अवश्य ही उल्लेखनीय है कि उसमें नैषध-चरित की अलौकिक सूक्तियों का ज़रा भी भावापहरण न करके पुरोहित जी ने स्वतंत्र रचना की है। ऐतिहासिक वृत्त के अतिरिक्त जो अन्य वर्णन है जैसे भारत वर्ष का गौरव, निषध और विदर्भदेश एवं षट् ऋतु आदि अनेक विषयों के वर्णन स्वतन्त्र होने पर भी, भावपूर्ण, शिक्षाप्रद और चित्ताकर्षक हैं।

'काव्य–कानन' पुरोहित जी की भिन्न–भिन्न समयों पर की हुई रचनाओं का एक बृहद् संकलन है। जिसमें अनेक विषयों पर आपकी कल्पनात्मक प्रतिभा का विकास दृष्टि-गत होता है। प्रस्तुत पुस्तक 'मन के मोती' में पुरोहितजी की काव्य-कानन के बाद की रचनाओं का संक्षिप्त संग्रह है इसमें भी अनेक विषयों पर सहृदय कवि के हृदयोद्गार हैं। बहुत से पद्य देश-प्रेम और शिक्षा-गर्भित एवं भाव-पूर्ण हैं। उदाहरणार्थ, दो-चार ही उधृत किए जाते हैं।

भले को बुरा बनाने में
समय ही दुर्जन होता है।
साथ में कांटों के रहकर
फूल क्या कांटा होता है।

'शासन-सौन्दर्य' कविता में प्रजा-सत्तात्मक शासन का बहुत ही उपयुक्त वर्णन है।

मधुर जब अद्भुत रत्नाकर
प्रजा-शासन का लहराता—
शांति की सीपी में तब ही
मोद का मोती बनजाता॥

और देखिए सूक्तियों में—

स्वर्ण के सिंहासन पर बैठ
व्यर्थ है राजा का खिलना।
दीन के सम ही दोनों को
एक दिन मिट्टी में मिलना॥
वही है सच्चा जो समझे
झूठ दुनियां के सपने को।
वही है अच्छा जो माने
बुरा औरों से अपने को॥

नैसर्गिक वर्णन का एक पद्य 'निशा-नवेली' में और देखिए—

गगन-गेह से बाहर आकर तू बल से बल खाती है।
काले-काले केशों को तू फैलाती, उलझाती है।
हीरों को, फूले फूलों को उनके बीच लगाती है।
वसुधा को चमकाने उनको तू चम-चम चमकाती है॥

इतिहास के महत्व पर—

जो इतिहास नहीं होता तो कैसे बढ़ता ज्ञान ललाम ?
नहीं किसी को लेना आता अपने पूर्वजनों का नाम।
कौन जानता सम्राटों के अधः पतन के कारण-कार्य ?
राजाओं में कैसे आते यश के हेतु क्षमा-औदार्य ?

आज कल छायावाद की कविता का बड़ा प्रचार है। इस का प्रधान कारण यही है कि छायावाद में सभी प्रकार की भली-बुरी कविता खप सकती है। किसी कविता में चाहे कुछ भी हृदयग्राही गम्भीर भाव न हो पर वीणा की झनकार के शब्दाडम्बर में गम्भीरता मानली जाती है। उसके अर्थ को यदि कोई काव्य-मर्मज्ञ न समझे तो प्रत्युत पाठक की ही अज्ञता समझली जाती है। 'मन के मोती' में कई पद्य ऐसे भी हैं जो छायावाद की श्रेणी में कहे जासकते हैं किन्तु पुरोहित जी की ऐसी रचनाएं भी प्रसाद गुण सम्पन्न एवं भाव—पूर्ण हैं जैसे 'निद्रा-निर्णय' में—

खूब अपनी आंख दोनों बंद कर
जो लगाता आंख है तुझ से सदा—
आंख खुलने पर खुली जब आंख तो
क्या करे वह लुट गई जब सम्पदा ?

इसका अभिधेय अर्थ तो निद्रा-विषयक है पर वह गौण है। कवि का असली उद्देश्य इस वर्णन में विषयानुरागी व्यक्ति के प्रति आध्यात्मिक उपदेश है।

संक्षेप में निवेदन है कि गज और सींप आदि से उत्पन्न मोती तो प्रसिद्ध ही हैं किन्तु ये 'मन के मोती' नवीन पदार्थ हैं। मोतियों की बहुमूल्यता पानी (आब) पर ही निर्भर रहती है। मेरे विचार में पुरोहितजी के ये 'मन के मोती' भी आबदार हैं—चमत्कृत हैं। आशा है काव्य-मर्मज्ञों को, सच्चे जोहरियों को ये अवश्य ही प्रफुल्लित करेंगे। बस पुरोहित जी के अनुरोध से प्रस्तुत पुस्तक के विषय में परिचयात्मक ये कुछ पंक्तियां लिखी गई हैं। पुस्तक में जो कुछ काव्योचित गुण हैं उन्हीं का उल्लेख किया गया है। पर गुण होता है वहां जहां दोष का होना भी सम्भव है। कहा है—'दृष्टं किमपि लोकेस्मिन् न निर्दोषं न निर्गुणम्'। ऐसी परिस्थिति में 'आवृयुध्वं यतो दोषाः विवृणुध्वं यतो गुणाः'।

इस उत्तरार्द्ध का अनुसरण किया जाना ही समुचित प्रतीत होता है।

विनीत

कन्हैयालाल पोद्दार
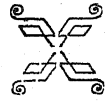
धन्यवादात्मक
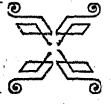
संस्कृत-साहित्य का हिन्दी में सर्व प्रथम परिचय कराने वाले, रईस, बैंकर और जागीरदार साहित्य-महारथी सेठ साहब श्रीकन्हैयालालजी पोद्दार का मैं भूमिका के लिए ही आभारी नहीं हूं किन्तु "नलनरेश" महाकाव्य के मार्मिक संशोधन के लिए भी मैं आजन्म ऋणी रहूंगा। अतः आपको और जिनको यह पुस्तक समर्पण की गई है उनको भी मैं विनम्र भावसे हार्दिक धन्यवाद अर्पण करता हूं।

लेखक

मनके मोती

❀ ललित लालसा ❀

पाता था पाता न जिसे कोई पावेगा।
जिसका अपरंपार पार बस कहलावेगा।
जिसकी महा विचित्र अनेकाकारधारता—
कर देती है सिद्ध स्वयं निज निराकारता॥
परम पिता वह कांतिधर, परमेश्वर, अघ-दुःख-हर—
होजावे सुख-शांति-कर, भू-माता-हित शीघ्रतर॥

शक्ति-स्तुति

(गायन, तर्ज लावणी)

आदिशक्ति की महाशक्ति को नमस्कार है वारंवार।
भारत का कल्याण करे वह पहना उसे शक्ति-जय-हार ॥टेर॥

(१)

महिमामयि! हम कैसे गावें तेरी गुण-गरिमा का गान ?
हममें भरे हुए हैं केवल अल्प बुद्धि—विद्या—बल-ज्ञान।
ऐसी अद्भुत क्षणप्रभा*पर, जो है अचला प्रभा-निधान-
विजय चाहते हैं हम पाना होकर लघु खद्योत-समान।
तूही है बस करने वाली प्राणों में भी असु-सञ्चार।
आदिशक्ति की महाशक्ति को नमस्कार है वारंवार॥

(२)

जिसका अङ्कुर परब्रह्म है, हर-विधि दो दल हैं सुकुमार।
हैं जिसके चौदह लोकों की शाखाएं शोभा-आगार।

---

* बिजली,

सुर—नर—किन्नर—यक्ष-निशाचर और चराचर नानाकार-
हैं जिसके फल-फूल अनोखे रंग-विरंगे, अपरम्पार।
ऐसे एक विचित्र वृक्ष का तूही तो है मूलाधार।
आदिशक्ति की महाशक्ति को नमस्कार है वारंवार॥

(३)

तू कर सकती धनी दीन को पलमें महाधनी को दीन।
ऐसा कोई नहीं, नहीं है जो तेरी माया में लीन।
तेरे करुणा-वरुणालय + में रहती मञ्जु मुक्तिकी मीन।
तेरे हैं उपमेय सभी, तू है सदैव उपमान-विहीन।
तेरे द्वारा ही होते हैं इस सारे जगके व्यापार।
आदिशक्ति की महाशक्ति को नमस्कार है वारंवार॥

(४)

वृष्टि-सृष्टि को करती तेरी दया-दृष्टि बन मेघाकार।
निराकार होकर भी तो तू हमें दीखती है साकार।
नभमें नहीं दिखाई देते ये तारे हैं तेजागार-
तेरी महा कीर्त्ति के ही ये चारु चिन्ह हैं गोलाकार।
तेरे बल से नाच रहे हैं विश्व()विश्वपति*विश्वाधार ×
आदिशक्ति की महाशक्ति को नमस्कार है वारंवार॥
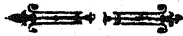
+ समुद्र, () संसार, *महादेव, × महाविष्णु

—: मधुर मिलन :—

(१)

सूर्य-चंद्र-से दीप जलाकर, तिमिरासुर का करके नाश-
तारों की लाखों आँखों से जिसे देखता है आकाश-
वह तो उसमें छिपा हुआ है होकर स्पष्ट शब्द-विन्यास;
फिर भी उसका पता न पड़ता, नभ को है ऐसा विश्वास।

है यह उसका गुप्त विलास-
जो करता सबका परिहास ॥

(२)

पहना करके रंग-बिरंगे अति अद्भुत नाना परिधान-
घन-दूतों को वायु कराता स्थान-स्थान पर है प्रस्थान।
फिर भी नहीं उसे वे पाते, रहता है वह गुप्त महान-
उनकी चपला-वधुओं से भी सुन-सुनकर अपना गुण-गान।

चलता है वह महिमावान-
विंदु-विंदु का करके थान ॥

(३)

ले आदेश महीमाया का, बना उसे अपना आधार-
सागर संतत बहते, रहते खड़े हुए गिरि अचलाकार;
फिर भी उसका पार न पाते, ऐसा है वह अपरंपार।
जो अपना सब भेद बताता गंध-भार का बन आगार।

करता है वह सदा विहार-
निराकार होकर साकार ॥

(४)

इसी प्रकार भटकता मानव पुष्कर, मथुरा, काशीधाम।
उसके दर्शन कभी न पाता, चक्कर खाता आठों याम।
वह तो स्वयं बस रहा उसमें दर्शनीय होकर निष्काम।
छूत, अछूत, चराचर ही हैं एक उसी का रूप ललाम।

विश्व-प्रेम में उसका ग्राम ;
विश्वनाथ है उसका नाम।

❀ संहार-सत्यता ❀

(१)

परमेश्वर भी नाम तुम्हारा हे शिव ! शंकर ! भोलानाथ !
तुम पूजे जाते देवों में आदिदेव-पदवी के साथ।
*कामवाम ! हम कैसे माने कामजीत तुम पूरंपार
काम-कामिनी-सी + काली के हो तुम कान्त कण्ठ के हार ।।

(२)

तुम संहारी, उग्र होगये होकर अतुलित दयानिधान !
तुम्हें अगम्य सदा बतलाते अन्तर्यामी भी भगवान ।
तुम तो कुछ भी वस्तु नहीं हो, हम कहते ये वचन ललाम।
जो कुछ हो तो कह दो अपने माता और पिता का नाम ।।

---

* कामदेव के वैरी । + रति-सम (काली) पार्वती । काली हेमवतीश्वरी

(३)

विना युग्म के जन्म किसी का कभी नहीं होता ()ईशान ।
विना जन्म के तुम कैसे हो मृत्युञ्जय हे महिमावान !
हे अविनाशी ! काशीवासी ! धाम तुम्हारा 'काशीधाम' ।
फिर क्योंहो तुम सदा सदाशिव ! सबमें हे त्रिपुरासुर-वाम !

(४)

क्या-क्या महिमा करें तुम्हारी हम तो हैं अल्पज्ञ महान ?
हम निर्धन बन चाह रहे हैं कल्पवृक्ष को देना दान ।
स्रष्टा होकर के भी ब्रह्मा, फैला अपनी करुणा-दृष्टि—
+ हे भव ! भवमें नहीं करेगा अणुकी भी तो सुन्दर सृष्टि ॥

(५)

इसी तरह से महाविष्णु भी देते नहीं किसी को वृद्धि ।
तत्त्वों में बसती है सन्तत बढ जाने की शक्ति-समृद्धि ।
जो है नहीं न वह होसकता, जो है उसका होय न नाश ।
*जो शंखों वर्षों पहले था, अब भी पाता वही विकास ॥

(६)

फिर क्या तो नव सृष्टि बनेगी, क्या पालन, क्याहै संहार ?
यही तुम्हारी बस लीला है—माया है—हे अपरंपार ॥
ब्रह्मा, विष्णु, महेश एक हैं, कार्य रूप का भेद महान ।
एक वही है एक सभी में, वही करे भारत-कल्याण ॥

() ईश्वरः शर्व ईशानः, इत्यमरः। + शिव और संसार। * नासतो विद्यते भावो ···

वाणी--विनय

(१)

नहीं मति जिसको पाती है
भवानीपति से ज्ञानी की–
करेगी उसका भी वर्णन
मोहिनी वाणीवाणी की ॥

(२)

आपही मनता वह उसको
मनाए कौन मना सकता ?
जानने वाला औरों को
उसे फिर नहीं जना सकता।

(३)

गिरा को जो वश में रखते
वही है ऊंचा पद पाते ।

वश्य जो निज वाणी के हैं
अन्त में वे मुँह की खाते ॥

(४)

शक्ति है वाणी में महती
दास प्राणी को करने की ।
बचा सकती यह मानवको
व्याधि से जीने-मरने की ॥

(५)

मधुरता ने ही वाणी की
बुद्धि है किनकी नहीं ठगी ?
सगाक्या कोई उनका है
जीभ ही जिनकी नहीं सगी ॥

(६)

बोल में सुधा घोल दे जो
जीभ निज वश में हो वैसी ।
जीभ जो पकड़े औरों की
जीभ हो सधी हुई ऐसी ॥

(७)

काम का कैसे हो सकता
सभा में जीभ चलाना है ।
जानने वाले के आगे
निरर्थक जीभ दबाना है ॥

(८)

जीभ की लम्बी जीभी से
सफ़ाई नहीं तोलते हैं ।
स्वच्छ तो वे कहलाते जो
बोल अनमोल बोलते हैं ॥

(९)

भरेगी वीणापाणि उन्हें
सुवाणी दासी है जिनकी ।
व्यर्थ ही बक-बक करने में
बड़ाई होती है किनकी ॥

(१०)

शक्ति दे ऐसी बलियों में
हमारी हो जावे गिनती ।
हमें दे विमोहिनी वाणी
यही है वाणी से विनती ॥
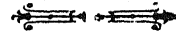
विधि-विधान

[१]

अर्थ इस भाग्य-पहेली का
ध्यान में किसके आता है ?
भाग्य का रचनेवाला भी
वश्य इसके वह धाता है ।

[२]

भाग्य पर अथवा भावी पर
किसी का ज़ोर नहीं चलता;
भोगना भोग उसे पड़ता
जन्म कर जो पलने पलता ।

[३]

लेख जो लिखा विधाता ने
नहीं वह राई भी घटता;

नहीं वह तिल-भर भी बढ़ता
नहीं वह पलभर भी हटता।

[४]

नहीं है वहाँ कमी कुछ भी
भरे हैं रत्नाकर जल से;
पात्र तो अपना-अपना ही
भरेंगे सब अपने बल से।

[५]

भाग्य के रहे भरोसे जो
नहीं वह भाग्यवान होता;
भाग्य पर, बल पर जो रहता
वही सुख-बीजों को बोहता।

[६]

नहीं पुरुषार्थ-शक्ति में ही
पूर्ति का पूरा लेखा है;
बड़े-से-बड़े बली को भी
भाग्य पर रोते देखा है।

[७]

एक है वह मानव, जिसके
दुष्ट भी डंडे जड़ते हैं;
एक है वह, जिसके पंडित
करोंड़ों पैरों पड़ते हैं।

[८]

एक-से-एक यहां बढ़कर,
देखकर क्यों कोई तरसे ?
भाग्य की वर्षा के अतिरिक्त
एक भी बूंद नहीं बरसे।

[९]

अंग क्या कर लेंगे अपना
फडककर तब दाएँ—बाएँ;
हाथ में नहीं हुई अपनें
हाथ की ही जब रेखाएँ।

[१०]

दिखाकर हाथ ज्योतिषी को
हाथ में क्या फल है लेना ?
हाथ क्या दो हाथों के है
किसी का भाग्य बदल देना ?

❀ माया की मधुशाला ❀

(१)

मोती से जो अश्रु बहाती
भूमि-ताप पर घन माला—
उन्हें पिलाती क्यों मधुपों को
फूल-फूल की मधुशाला ?

(२)

निज सहस्र कर-कर-कमलों से
सुरा पिलाने कमलों को—
कमल बन्धु क्यों आते दिन में
करके तम का मुख काला ? मोती से जो...

(३)

छान छान करके सुधांशु ने
शुद्ध सुधा को वसुधा पर—

मोहित किया चकोरों को क्यों
पिला चाँदनी की हाला? मोती से जो...

(४)

नाँच देखने, गाना सुनने
घटा-छटा की मद्य पिला—
नम्र-नील नीरद क्यों करता
नीलगलों को मतवाला? मोती से जो...

(५)

करके अमल ओस-मदिरा को
बडे प्रेम से दिन मुख में—
क्यों दिनेश को देती अचला
उसका प्याला पर प्याला? मोती से जो...

(६)

वाडवाग्नि से खिंची हुई उस
चल तरङ्ग--क्रीडन--मधुको—
चन्द्र-चषक द्वारा सागर ने
स्वोदर में है क्यों डाला? मोती से जो...

(७)

उठा सुरोंने रत्नाकर से
सुरा वारुणी के घट को—
असुरों की आँखों में डाला
क्यों मोहन मद का जाला? मोती से जो....

(८)

चढ़ कर नहीं उतरने वाली
भक्ति-ज्ञान की मदिरा को–
भक्त ज्ञानियों ने पीकर के
पावन पद को क्यों पाला ? मोती से जो ..

(९)

लीलामय--लीला--हाला का
पीकर प्याला पर प्याला—
महा मोहनी बन क्यों बनती
मतवाली माया—बाला ? मोती से जो ..

(१०)

हैं जिसमें सौन्दर्य-सुरा के
भरे हुए भाण्डार कई—
स्वयं प्रकृति ने क्यों खोला उस
हाला--शाला का ताला ? मोती से जो

—: सच्चा सौंदर्य :—

(१)

आओ-आओ, मत बहलाओ, मत ललचाओ तरसाओ;
और नहीं तो आकर मुझको मेरा दोष बता जाओ।
जिन बातों की तुम्हें चाह थी, वे अब मुझ में नहीं सही;
पर मैं रही आज भी वैसी और मुग्ध है हृदय वही॥

(२)

छोटी-सी सूनी कुटिया है, वह ललाम अब धाम नहीं।
राम-राम करने पर भी तो मिलता है आराम नहीं।
मेरे अंग-अंग में, मन में अब वह बड़ी उमंग नहीं।
मेरी काली कमली पर अब चढ़ता कोई रंग नहीं॥

(३)

जो न करेगी दुखी सुखी को ऐसी मेरी आह नहीं;
जो न जलावेगी लोहे को, उसमें ऐसी दाह नहीं।
मेरी मूक वेदना का अब कोई भी उपचार नहीं;
जो हलका है भूमि-भार से, उसमें ऐसा भार नहीं॥

(४)

बिना तुम्हारे विरह-व्यथा का होगा कुछ परिणाम नहीं ।
मोद-विनोद कहां बैठे हैं, सुख का भी है नाम नहीं ।
मतलब की दुनिया में मेरा अब कुछ भी सम्मान नहीं ।
विना तुम्हारे कोई मेरा कर सकता अब त्राण नहीं ॥

(५)

इससे प्रियतम ! करुणा करके परदेशों का त्याग करो;
आओ-आओ, मुझे बचाओ, मेरी चिन्ता-व्याधि हरो ।
कहो, तुम्हारे मृदुल हृदय में क्या वह सच्चा स्नेह नहीं ?
तुम्हें सुखी करनेवाली क्या अब वह मेरी देह नहीं ?

(६

मत बतलाओ; मैं तो तुमको जान गई, अब जान गई;
झूठे जग की प्रीति-रीति की चालाकी पहचान गई ।
प्रेम दिखानेवाले प्रेमी सब अंदर से काले हैं;
वे बाहर के रूप-रंग को सदा चाहनेवाले हैं ॥

(७)

स्वच्छ हृदय की सुन्दरता ही सुन्दरता कहलाती है ।
रूप-रंग तो दो दिन के हैं, पर वह बढ़ती जाती है ।
उसके सच्चे ग्राहक को ही सच्चा प्रेमी कहते हैं;
रस-सुगंध के लोभी भौंरे झूठे होकर रहते हैं ॥

❀ पुरुष–पूर्णता ❀

(१)

स्त्री को स्वपति-व्रत के विना
नारी कहा कर भी सदा–
सच्चे सतीपन की कभी
मिलती नहीं है सम्पदा ॥

(२)

जैसे पतिव्रत है नहीं
केवल परम–छविधाम में;
वैसे नहीं पुरुषत्व भी
है पुरुष के ही नाम में ॥

(३)

बसता पुरुष में सर्वदा
बल के सहित मनुजत्व है;
पर एक पत्नी-व्रत विना
पूरा नहीं पुरुषत्व है ॥

(४)

जिसने लिया यह व्रत कठिन
क्या वह नरों में गण्य है ?
जिस पुरुष में पुरुषत्व है
वह अन्य सुर बन धन्य है ॥

(५)

है सुन्दरी श्री से अधिक
रखती सुयश सच्ची सती।
पत्नी-व्रती के सामने
कुछ भी नहीं है वर यती ॥

(६)

हैं शक्तियां, सब सिद्धियां,
सारे गुणों की राशियां–
सन्तत बनी रहतीं स्वयं
ऐसे पुरुष की दासियां ॥

(७)

यश-रूप—साहस—शौर्य-सुख
उसके कहाते दास हैं।
बल-बुद्धि—विद्या--कीर्ति भी
उसके निरन्तर पास हैं ॥

(८)

वह वीर पुरुषोत्तम सुधी
जन-देह में जगदीश है।
नर-जाति का अवनीश है
वह प्राणियों का शीश है॥

(९)

ऐसे पुरुष—हरि के जहां
पावन पदों का वास है—
वह धाम निर्जर-धाम है,
हरिधाम या कैलास है॥

(१०)

है निज सती—व्रत दूसरा
पुरुषत्व-नाम ललाम है।
पुरुषत्व जिसमें पूर्ण है
बस पुरुष उसका नाम है॥

सुख-शान्ति

[१]

सौख्य कहां है, शांति कहां है
इनका कहां निवास्थान ?
क्या निधान इनके महान हैं–
मानव--ज्ञान--ध्यान—विज्ञान ?

[२]

नभ की निरी नीलिमा में क्या
मिलती इनकी छटा विचित्र ?
सूर्य-चन्द्र-ताराओं में क्या
इनकी स्थिति है स्वच्छ-पवित्र ?

[३]

निर्मल जल की कल-कल में क्या
बहती इनकी उज्ज्वल कांति ?
शीतल-मन्द-सुगन्ध पवन में
वास कर रहे क्या सुख-शांति ?

[४]

सौख्यद-सुरभित-शीत हिमालय
गौरी-शङ्कर का कैलास--
और स्वर्णगिरि रखते हैं क्या
इन दोनों को अपने पास ?

[५]

शिशुओं के भोले बोलों में
क्या है इनका महा मिठास ?
रङ्ग-विरङ्गे विहङ्गमों में
क्या है इनका बसा विलास ?

[६]

वृक्षों की डाली-डाली से
क्या है इनका हुआ मिलाप ?
फल-दल-फूल-मूल से ही क्या
जन्म रहे ये अपने आप ?

[७]

मूल्यवान रत्नाकर-निधियां
क्या रखती इनका आकार ?
क्या इन के आधार हो रहे
स्वर्ण--रजत--मणि--मुद्रागार ?

[८]

सम्राटों के प्रासादों में
लगी हुई क्या इनकी छाप ?
क्या निज में रखते हैं इनको
रमणी-मणियों के आलाप ?

[९]

इनको कहां ढूंढने जावें
कहां अनश्वर इनका गेह ?
इनको रखता सदा-सर्वदा
प्राणिमात्र का सच्चा स्नेह ?

[१०]

विश्व-प्रेम में सुख बसता है
और उसी में रहती शांति ।
इनका क्षय पल में कर देती
मानव-मन की कलुषित भ्रांति ॥
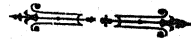
कवि की कविता

(१)

एकमुखी चतुरानन है तू करके नई कल्पना-सृष्टि ।
द्विभुज विष्णु तू होजाता है भावों पर रख पालन-दृष्टि ।
तू है दिव्य द्विनेत्र त्रिलोचन शत्रु-कीर्ति का कर संहार ।
हे कवि ! तुझको धन्य-धन्य है धन्य-धन्य तेरा व्यापार ॥

(२)

है तेरा संसार निराला बन विचित्रता-पारावार ।
सार-हीन होकर जो निज में रखता सब का सुन्दर सार ।
जिसके आगे पानी भरती सृष्टा की सृष्टि अपार ॥
दक्ष विश्वकर्मा की कृतियां होजाती हैं लज्जागार ।

(३)

निगमागम-रामायण-जयका तू ही लेखक है गुणधाम ।
लौकिक वर्णन-काम अलौकिक होकर भी तू है निष्काम ।
तू ही नभ में फूल खिलाता जिनकी मीठी गन्ध अमन्द-
फैल-फैल कर महीलोक पर उसे बना देती सुख-कन्द ॥

(४)

तेरे विना स्वयं होजाता स्नेह-सौख्य-सौन्दर्य-अभाव ।
जीवन-विन्दु-चपल हो उठता जन-मन जीवन का सब चाव ।
कई रसों की सुरा रसीली कभी नही होती तैयार ।
पूरा होता नहीं रसा का और सुन्दरी का शृङ्गार ॥

(५)

तेरे ही कारण जड़ में भी आ जाते हैं पावन प्राण ।
पत्ता—पत्ता सुना रहा है वंशीधर—वंशी की तान ।
फूल फूल, खिल-खिल हँसते हैं सिन्धु-नदी-नद गाते गान ।
पृथ्वी - पर्वत पाठ पढ़ाते तुझे बनाते महिमावान ॥

(६)

कविता क्या है ? है वह तेरा भव-अनुभव-वैभव-विज्ञान ।
वह कहलाती तेरा अक्षय सुखदायक - सम्पत्ति - निधान ।
परमेश्वर की गिरा-सुधा का वह है वह शुचि सिन्धु ललाम—
जो तेरे द्वारा वसुधा पर बहता रहता है अविराम ॥

(७)

जिसमें ऐसे मोती मिलते कोविद को करने पर यत्न—
जिन्हें देख कर डूब रहे हैं शेष कई रत्नाकर-रत्न ।
इनसे पृथ्वी वसुन्धरा बन होजाती दिव-छवि-उपमान ।
हे कवि ! तू कविता से पाता अतुल-अनश्वर-यश-सम्मान ॥
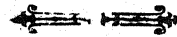
सरस सूक्तियां ।

(१)

लोक में पूरे नास्तिक को
मिलेगी क्यों उसकी सत्ता ?
पता लाली में उसका, वह
देखता महँदी का पत्ता ॥

(२)

अनोखा वनमाली आकर
भूमि में एक बीज बोता;
वृक्ष जो देता बीज, वही
बीज में छिपा हुआ होता ॥

(३)

महीरुह-शाखा—पल्लव सींच
लाभ क्या कोई जन लेगा ?
करेगा जड़ को भी जंगम
वही जो जड़ को सेवेगा ॥

(४)

कांतिमय कमलबंधु से ही
कांति है कुमुदों की ठिठकी;
चौर कमलों को करने ही
चांदनी पड़ती है छिटकी ॥

(५)

बाग़ में पीली कलियां हैं
सुगंधित सोने की डलियां;
उन्हें तज करता है माली
चमेली से भी रँगरलियां ॥

(६)

सदा ही अच्छा लगता है
कली को भौंरा भी काला;
वही है प्यारों का प्यारा
प्रेम में जो है मतवाला ॥

(७)

अंध बन क्यों जलता दीपक
वायु के चलने पर जलता ?
फूलता फल क्यों तब मन में
फूल से ही जब वह फलता ॥

(८)

स्नेह-सागर को अपने में
हृदय की रखती है गागर;
विंदुएँ रहती सागर में,
विंदुओं में रहता सागर ॥

(९)

नहीं जो समझे, वह आया
यहां क्या देने, क्या लेने?
उसे ही पड़ जावेंगे फिर
आप ही लेने के देने।

(१०)

भीमतम भव-सागर से जो
नहीं निज नौका खे लेगा–
वही फिर आकर वारंवार
यहां पर पापड़ बेलेगा।

(११)

नहीं है जिस मानी में मान
मोतियों के वह बिकता मोल;
त्रिलोकी वश में है उसके
बोलता बोल सुधा जो बोल

(१२)

व्यर्थ है ऐसा बोल बड़ा
जिसे है मद-जल से सींचा;
सभी ने होता देखा है—
घमंडी का ही शिर नीचा ॥

(१३)

नाचते हैं जो वैरी के
हाथ की कठपुतली होकर–
बनेंगे क्या वे कभी स्वतंत्र
दासता-बीजों को बोकर ?

(१४)

कमीना वही कहाता है
नीच जो गिनता औरों को;
रंग से बड़ा मानता है
सदा कालों से गौरों को ॥

(१५)

नरों में हैं अछूत सर्वत्र
भाव यह क्यों मन में भरता ?
छूत बन मिट्टी का पुतला
घृणा क्यों मिट्टी से करता ?
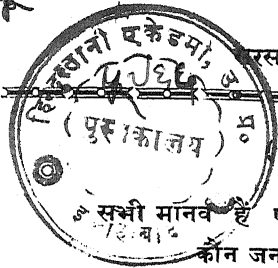
(१६)

सभी मानव हैं एक समान
कौन जन स्वर्ण-शीश का है ?
लोक में क्या अछूत क्या छूत
लाडला उसी ईश का है ॥

(१७)

जन्म से वह ऊंचा, नीचा
बात यह कहलाती कच्ची;
देह तो सब की गंदी है
सफाई मन की ही सच्ची ॥

(१८)

खुली जब नहीं बडी आंखें
व्यर्थ तब अलख जगाना है;
नहीं लौ लगी वश्य मन में
व्यर्थ फिर भस्म लगाना है ॥

(१९)

रमा का ही सेवक रहता
जमाकर आसन जो वन में;
रमाता धूनी तब वह, व्यर्थ
राम जब नहीं रमा मन में ॥

(२०)

मारना छापा ही है, तब
लगाना खूब तिलक-छापा—
नहीं जब अपने को आता
मारना अपना ही आपा ॥

(२१)

छिपाने वाले की भी तो
फूटती पापों की मटकी।
बात क्या छिप सकती उससे
जानता है जो घट-घट की ॥

(२२)

दण्ड के भय से क्यों दोषी
यहां पर झूठ बोलता है?
नहीं वह डरता है उससे
पोल जो सभी खोलता है ॥

(२३)

जीव के जीवन से ही तो
जीव निज जीवन पाता है।
अहिंसा-व्रत फिर भी उसको
सुपालन करना आता है ॥

(२४)

वहां पर वही खूब सोता
यहां जो रहता है जगता।
वहां पर वही ठगा जाता
यहां जो भोलों को ठगता॥

(२५)

पुण्य क्या बाहर का करता
पाप जब अन्दर बहता है।
लाभ क्या तन के धोने से
मैल जब मनमें रहता है॥

(२६)

हवा क्या ठीक करे अपनी
हवा में रहकर भी बन्दी।
हवा खाने से से क्या होगा
हवा जो खटकी है गन्दी॥

(२७)

क्रोध करना भी सज्जन का
अन्त में मन को हर्षाता।
मेघ का गर्जन-तर्जन ही
शीत जल—धारा वर्षाता॥

(२८)

सुनेगा क्या जाने वाला
औषधों की कूटा-कूटी ?
नहीं दुनियां में होती है
कहीं भी टूटी की बूटी ॥

(२९)

नहीं हो उसका बांका बाल
जिसे प्रभु गोद खिलाता है।
उसे मारेगा कोई क्या
काल ही जिसे जिलाता है ॥

(३०)

क्रूर वह क्यों होगा जिसकी
सलोनी सूरत भोली है।
काक से पल कर भी कोकिल
बोलती मीठी बोली है ॥

(३१)

भले को बुरा बनाने में
समय ही दुर्जन खोता है।
साथ में कांटों के रह कर
फूल क्या कांटा होता है ?

(३२)

कभी भी नहीं टपक सकता
भलापन घने कमीने से।
निमोली क्या होगी अंगूर
सुधा बसुधापर पीने से ?

(३३)

रखेगी किसको मालामाल
सदा ही गिन्नी-चोअन्नी ?
धनी वह सन्तोषी है जो
माल सें काट गया कन्नी ॥

(३४)

नटों का खेल देख कर क्यों
लगावें वाह वाह की रट ?
नटों का घर ही है दुनियां
सभी हैं उस नटवर के नट ॥

(३५)

गई को भूल-भाल करके
बात अब रक्खो रही-सही।
भले ही हो संसार बड़ा
सार है इसमें एक वही ॥

(३६)

पार जो पड़ जावे सुखसे
हाथ में वही काम लेना।
मनुज जो मिश्री से मरता
ज़हर क्यों फिर उसको देना॥

(३७)

गेह के, अपने कष्टों को
सभी से कहना खोना है।
भोगना है जिनको, उनका
व्यर्थ फिर रोना—रोना है॥

(३८)

नहीं जल गिनता करुणा-पात्र .
मीन सी दीना पगली को।
तोड़ने वाला क्या समझे
कली की बडी बेकली को॥

(३९)

स्वर्ण के सिंहासन पर बैठ
व्यर्थ है राजा का खिलना।
दीन के सम ही दोनों को
एक दिन मिट्टी में मिलना॥

B5

(४०)

माल के भरे ख़जाने देख
धनीजन क्यों मदमाते हैं।
यहां वे आते ख़ाली हाथ
हाथ ख़ाली ही जाते हैं॥

(४१)

फूल कर कुप्पा क्यों होवें
सभी को दो दिन जीना है।
यहां क्या बड़ा कुआ खोदें
चार दिन पानी पीना है॥

(४२)

जागते रहने पर भी तो
देखते सब कोरा सपना।
यहां का नाता झूठा है
नहीं है कोई भी अपना॥

(४३)

और का कष्ट काट कर जो
हँसा कर हँसनेवाला है।
दुःख में उसे एक भी नहीं
यहां पर रोने वाला है॥

(४४)

देख कर लोगों का आना
वारती है उन पर मोती।
जानकर फिर उनका जाना
दुरंगी दुनियां है रोती॥

(४५)

यहां जब जीना दो दिन का
व्यर्थ है फिर रोना-धोना।
रखेगा आना—जाना ही
त्रिलोकी का कोना-कोना॥

(४६)

सजीली होकर भी दुनियां
वेष में रहती है नंगी।
रँगीली होकर भी देखो
कहाती है यह नारंगी॥

(४७)

मौत ही देख थकावट को
गोद में हमें सुलाती है।
हमारे मैले कपड़ों को
बदल ने ही वह आती है॥

(४८)

रात—दिन खा-पीकर के भी
जगत तो भूखा-प्यासा है
ईश की आशा ही है सार
और सब खेल-तमाशा है ॥

(४९)

सुनेगा कोई किस की क्या
भरी हैं मनमें जब घातें।
सभी दुनियां में करते हैं
आपके मतलब की बातें ॥

(५०)

किसी की गाली सुन कर भी
न लाओ आंखो में लाली।
करो मत अपना मन मैला
भले ही सूरत हो काली ॥

(५१)

स्वच्छता मनमें जिसके है
भला वह काला रँग वाला।
बुरा वह बाहर से गौरा-
और जो अन्दर से काला।

(५२)

देश के हित में मर जाना
मेरु को पकड़ हिलाना है।
पालना दुर्जन की करना
सांप को दूध पिलाना है॥

(५३)

श्रमी के कभी नहीं पड़ता
भाग्य पर लोहे का ताला।
नशा क्यों उसका उतरेगा
प्रेम का जो पीता प्याला॥

(५४)

कहो क्यों जाया होगी तब
मर्त्य की काया की छाया—
अमर भी नहीं जानता जब
मानिनी माया की माया॥

(५५)

धनी लख धन की ढेरी को
बजाता मद की भेरी है।
चांदनी यहां चार दिन की
अन्त में रात अँधेरी है॥

(४६)

वही है सच्चा जो समझे
झूठ दुनियां के सपने को।
वही है अच्छा जो माने
बुरा औरों से अपने को॥

(४७)

वही है मनुज बड़ा भारी
भक्त भी वही कहाता है—
जान कर जो निज को छोटा
ईश-गुण-गण को गाता है॥

(४८)

घृणा के योग्य दोष ही हैं
नहीं है दोषी या रोषी।
दिखाई देता यहां नहीं
कहीं भी कोई निर्दोषी॥

(४९)

हँसो मत बलधा.ी होकर
अबल के दुख में फँसने पर।
हँसेगा सवशक्तिशाली
तुम्हारे से हँसने पर॥

(६०)

गोलियां भत्तक घाकत से
मौन के गुण को लेलेतीं;
किन्तु उस रत्तक व्यापक को
रक्त की बूंदें कह देतीं ॥

(६१)

पटों से कई उपायों के
पाप की आग भड़कती है।
फड़कती आंख नहीं तो क्या
हृदय की आंख धड़कती है ॥

(६२)

गर्व के लिए नहीं मिलता
सहायक होने को बल है।
दीन के कष्ट काटना ही
विनिश्चल इसका शुभ फल है ॥

(६३)

विचारो जो कुछ कहना है
कहो मत जिसे विचारा है।
नहीं वह सब कहने की है
विचारों की जो धारा है ॥
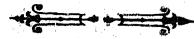
❀ पन्ना सी पन्ना ❀

(१)

"अरे-अरे ! हा ! हाय-हाय ! यह क्या कर डाला ?
रे पापी वनवीर ! पड़ेगा तुझ पर पाला।
तू ने अपनी जाति दिखादी दासीदारक !
हृदय-विदारक काम किया है स्वामीमारक !
आज विक्रमाजीत को, सुत सिंह को, मार कर—
तू हत्यारा हो गया रे अधमाधम ! नीच नर !

(२)

"उदाहरण ऐसा न मिलेगा कायरता का।
इससे बढ़ कर और प्रमाण न पामरता का।
भाग्यवान भूपाल हाय ! क्या मौत मरे हैं !!
कैसे भीषण भोग भाग्य में भला भरे हैं ?
ऐसा निर्दय, दुष्ट जन सुना किसी ने क्या कहीं ?
वित्त-राज्य के लोभ से क्या-क्या हो सकता नहीं ?

(३)

"नहीं नीच वनवीर पाप से मन मोड़ेगा।
उदयसिंह को कभी नहीं जीता छोड़ेगा।
इसके भीषण भूख राज्य की बढ़ी हुई है।
इसके हत्या आज शीश पर चढ़ी हुई है।
कहां छिपाऊं लाल को, मातृहीन को, अबल को?
मैं रोकूंगी किस तरह उस पापी को, प्रबल को?

(४)

"मेरे प्यारे उदय! नींद में खूब सो रहा।
तू न जानता दृश्य यहां क्या आज हो रहा।
होनहार से महाबली भी हार मानता।
है भावी बलवती कौन यह नहीं जानता?
तुझे डरावे किन्तु क्यों भक्षक-भय की आपदा?
तुझे बचावेगा वही जो सबका रक्षक सदा॥

(५)

"मान रहा तू लाल! मुझे ही अपनी माता।
तू मदमाता नहीं, किन्तु है मन-सुखदाता।
क्या ऐसे के साथ आज मैं दग़ा करूंगी?
स्वामिभक्ति को छोड़ पातकी-भाव भरूंगी?
क्या सौंपूंगी मैं तुझे उस घातक के हाथ में?
भोगूंगी सुख-भोग फिर अपने आत्मज-साथ में?

(६)

"नहीं-नहीं, यह कभी नहीं मुझ से हो सकता।
मेरे मन से कौन स्नेह को है खो सकना ?
मरजाऊंगी, तुझे नहीं पर मरने दूंगी।
तेरी जननी मैं न, किन्तु जननी-पद लूंगी।
माता का सच्चा हृदय ईश्वर ने मुझको दिया।
वही हिया अब दृढ़ किया जिसका पय तू ने पिया॥

(७)

"हे भगवन् ! क्या करूं, दैव अब फिरा हुआ है ?
इधर गिरूं तो गर्त्त, उधर यह बड़ा कुआ है।
एक ओर है उदयसिंह आंखों का तारा—
और दूसरी ओर पुत्र है मेरा प्यारा।
खड़ी हुई यह देह है खाकर जिस के चून को—
उसे न दूंगी, किन्तु मैं दूंगी अपने खून को॥

(८)

"जीकर मेरा पुत्र बड़ा क्या काम करेगा ?
जीवित रह कर उदय प्रजा के कष्ट हरेगा।
यह लाखों के लिए बनेगा भाग्य-विधाता—
गौरव-दाता और शोक से, दुख से त्राता।
रक्खेगा यह यत्न कर अपने कुल के नाम को।
फैलावेगा शांति को, आश्रित कर निज वाम को॥

(९)

"इससे मेरे लाल ! कड़ा तू करले मन को।
धर्म-कर्म में आज लगादे निज जीवन को।
होजा तू बलिदान, मुक्ति को सहसा पाजा।
निज स्वामी के, बालसखा के प्राण बचाजा।
यों मरना मरना नहीं, पर जीना ही मौत है।
वीरों-की-सी मृत्यु ही सच्चा जीवन-स्रोत है॥

(१०)

"जो मरता पर-हेतु वही है मानव जीता।
सुयश-सुधाको वही इसी वसुधा पर पीता।
जीने के हित अन्य लाभ से जो टल जाता—
वह जीता भी हुआ मरा ही है कहलाता।
इससे मेरे लाड़ले ! लगजा अच्छे काम में।
लजा न मेरे दूध को, जा तू जा सुरधाम में॥

(११)

"सुत को कटता हुआ किन्तु कैसे देखूंगी ?
महावज्र से कठिन हृदय कैसे कर लूंगी ?
क्या मैं करूं उपाय मुझे कोई बतलाओ।
आओ—आओ आज आधि से मुझे बचाओ।
मैं मरजाऊंगी प्रथम, फिर चाहे जो हो यहां।
शरण आपकी छोड़ मैं, हे ईश्वर ! जाउं कहां ?

(१२)

"मरने का कुविचार किया है मैंने कैसा !!
है यह मेरा यत्न महा कायर का जैसा।
नहीं-नहीं मैं आज कभी भी नहीं मरूंगी।
जीऊंगी मैं स्वयं, उदय का दुःख हरूंगी।
दे दूंगी निज पुत्र को हत्यारे के हाथ में।
निर्बल के बल राम हैं सन्तत मेरे साथ में॥

(१३)

"प्रण से पलटेगी न कभी भी रजपूतानी।
मत कर मन में गर्व अरे घातक अभिमानी!
तुझ को सुख से नहीं कभी भी सोने देगा—
यह है मेरा रक्त कभी जो बदला लेगा।
जो बोलेगा निकल कर मेरे प्यारे लाल से।
बोली निकलेगी न पर, कर से या करवाल से॥

(१४)

"एक-एक भी बूंद टपक कर लघु तनुधर से—
सौ-सौ दीन पुकार करेगी परमेश्वर से।
निरपराध का खून भयानक ऐसा होता—
नीलकंठ—गल-गरल—गर्व को भी जो खोता।
मेरे प्यारे पुत्र को आव दुष्ट, अब काट तू।
तू चाटेगा धूल ही या काटेगा खाट तू"॥

(१५)

निज बारी के हाथ उदय को भेज दिया फिर।
उसके बदले कटा लिया अपने सुत का शिर।
ऐसा भीषण दृश्य देखना जिसको आता—
कहलावेगी क्यों न महा धन्या वह माता?
छोड़ अन्त में उदय को "आशाशाह"-समीप वह—
पीछे सुख में होगई पहले दुस्सह दुःख सह॥

(१६)

पन्ना से बड़ी कीर्ति रखती तू "पन्ना"!
धन्य देश वह हुई जहां पर तू उत्पन्ना।
तेरे माता-पिता धन्य हैं, तू भी धन्या।
हमने देखी-सुनी न ऐसी माता अन्या।
रख कर ऐसे कर्म से महिलाओं की लाज को—
पहन लिया तूने स्वयं स्वामि-भक्ति के ताज को॥

❀ कमला की कीर्ति ❀

(१)

पहले ज़िला बुलन्दशहर में एक मनोहर—
बसा हुआ था गांव स्वयं मोहनपुर होकर।
इसी नाम को हुआ निरन्तर स्वार्थक करता—
दर्शक मनमें महा मोदको वह था भरता॥

(२)

क्षत्रिय-नायक रामनाथ था उसका स्वामी।
जो कामी× था प्रजा-सौख्य का सब से नामी।
करुण*कष्ट-क्षय हेतु सदा वह वीर तरुण था।
नर-तनु में वह शत्रु-तिमिर के लिये अरुण था॥

× चाहने वाला * जिस पर दया आवे

(३)

थी उसकी प्रियतमा कान्त कमला-सी कमला।
जो चपला थी नहीं प्राप्त कर श्री को अमला।
वह थी अपने एक कृष्ण की जंगम गीता।
कहना अनुचित नहीं उसे कलियुग की सीता॥

(४)

वह थी जैसी रूपमती, सुख-शोभा-सागर—
वैसी ही वह बुद्धिमती थी शौर्य-गुणाकर।
पूर्ण चन्द्र की चारु चंद्रिका से भी बढ़ कर—
उसकी उज्ज्वल कीर्त्ति छागई दूर-दूर पर॥

(५)

किन्तु सती को कौन सताने को आता था?
जो आता था वही स्वयं मुँहकी खाता था।
इससे उसकी ख्याति आप ही और बढ़ गई।
मानो यश के रम्य गेह पर ध्वजा चढ़ गई॥

(६)

महा विजय के इसी केतु को तोड़ गिराने—
मेरठ-सूबेदार यत्न करता मनमाने।
वह लम्पट था, धनी-युवा था, मदमाता था।
वह भी एक नवाब उस समय कहलाता था॥

(७)

नहीं मिल सकी किसी तरह भी उसे सफलता।
होकर वह बेचैन हाथ था अपने मलता।
हार अन्त में चाहा उसने रावण होना।
उसे भागया महा मान को अपने खोना॥

(८)

नभ में जमा जमात्र धूलि-मेघों से तमका—
मोहनपुर में एक दिवस फिर वह आधमका।
हो जाती है यथा नाव से सर में खल-बल—
तथा गांव में ख़ूब मच गई सारे हल-चल॥

(९)

घन-गर्जन से गेह जिस तरह करता थर-थर—
धूज रहा था सभी गांव बस उसी तरह पर।
थर्रा जाता वृक्ष क्रुद्ध बानर से जैसे—
कांप रहा था ठीक स्वयं मोहनपुर वैसे॥

(१०)

पड़ने लगे पड़ाव, गड़े फिर तम्बू-डेरे।
खड़े हुए थे कई सिपाही जिनको घेरे।
खाने का सामान लूट में जैसे आता—
वैसे ही सर्वत्र वहां था बिखरा पाता॥

(११)

दीनों से बेगार खूब ही ली जाती थी।
प्रजा गांव की भूख-दुःख से चिल्लाती थी।
वे पीकर घी-दूध नहीं सुख से जीते थे—
ग्रामीणों का देह-रक्त ही वे पीते थे॥

(१२)

रचे गए षड्यन्त्र वश्य कमला को करने।
उस नवाब की महा व्याधि को पल में हरने।
किया गया दरबार सभी को दिया निमन्त्रण।
नज़रें लेकर गए वहां पर सब मानीजन॥

(१३)

रामनाथ ने वहां उपस्थित निर्भय होकर—
भेंट कर दिये उसे कई उपहार मनोहर।
हुआ नवाब प्रसन्न पास में उसे देख कर।
बैठाया सप्रेम उसे ऊंचे आसन पर॥

(१४)

दे दी जब ही बिदा, सभी की नज़रें लेकर—
तब नवाब ने कहा उसे गल-भूषण देकर—
"लो यह ज़ेवर तुम्हें दे रहा म इनाम में।
चाह रहा हूं मदद तुम्हीं से एक काम में॥

(१५)

''कमला को मैं पास चाहता रखना हर दम।
बे-ग़म कर दो उसे बनाकर मेरी बेग़म।
मेरा भी ग़म इसी तरह से हट जावेगा।
और तुम्हारा नहीं कहीं कुछ घट जावेगा॥

(१६)

''कर लेना तुम एक दूसरी अपनी शादी।
करो न, कर इन्कार आज अपनी बरबादी।
मेरी बेग़म खुशी-खुशी बदले में ले लो;
लेकिन तुम उस हूरपरी को मुझको दे दो॥

(१७)

''बहुत बड़ी जागीर, बड़ा रुतबा दे दूंगा।
तुमको अपने पास हमेशा मैं रख लूंगा।
है बहिश्त में चली गई कमला यों जानो।
मैं मालिक हूं हुकुम आज तुम मेरा मानो॥

(१८)

''खुश रखना ही मुझे तुम्हारा बड़ा फर्ज़ है।
मैं मरीज़ हूं बड़ा, मुझे जो इश्क-मर्ज़ है —
कमला उसकी दवा, उसी की मुझे गर्ज़ है।
तुम हकीम हो, उसे मुझे दो यही अर्ज़ है॥

(१६)

"हीरे, मोती, लाल, अशर्फी, सारा ज़ेवर—
तुम ले लो, पर कभी न बदलो मुझसे तेवर।
वर्ना होगा बुरा तुम्हारा हाल यहां पर।
समझो किसके पास खड़े हो और कहां पर॥

(२०)

"तुम हिन्दू हो, क्यों न करोगे मेरा कहना।
मैं आक़ा+ हूं और तुम्हें दुनियां में रहना।
दे दो मुझे जवाब शर्म यों क्यों आती है?
अज़्* ख़ामोशी नीम रज़ा ही हो जाती है"॥

(२·)

"ओ नवाब जी! आप कह रहे हैं क्या ऐसे?
अनहोनी जो बात, बताओ होगी कैसे?
और काम के लिए हुकुम जो मैं पाऊंगा;
करने को तैयार उसे मैं हो जाऊंगा॥

(२२)

"मेरी वाणी उसे नहीं यों कह सकती है।
पल भी मेरे विना नहीं वह रह सकती है।
हम हिन्दू हैं, हमें धर्म में पड़ता रहना।
पार पड़ेगा नहीं आपका ऐसा कहना"॥

+ मालिक * चुप रहना आधा इक़रार है।

(२३)

कर नवाब ने कोप कहा "ओ काफ़िर ! तेरा—
सर होगा अब क़लम, हाथ यह बढ़ता मेरा।
तुझे मार कर उसे अभी मैं ले आता हूं।
मैं भी सूबेदार यहां का कहलाता हूं॥

(२४)

"ऐ सिपाहियो ! उठो सभी हथियार खोल लो।
गुस्ताख़ी की इसे यहां पर अभी सज़ा दो।
यह है नमकहराम, नहीं जो मुझसे डरता।
मरता है बेमौत, बड़ी यह ज़िद है करता॥

(२५)

"खोकर अपनी जान, जान से प्यारी देगा।
देकर अपनी शान और बदनामी लेगा।
पकड़ो- बांधो इसे यहाँ से मत जाने दो।
मारो, मेरे पास इसे अब मत आने दो॥

(२६)

"मेरे क़ैदी रामनाथ ! तू जान बचा ले।
उसको लादे, नहीं चलेंगे तुझ पर भाले।
बीस सिपाही अभी साथ में इसके जाओ।
कमला को तुम डाल पालकी में ले आओ॥

(२७)

"जाकर के यह वहां नहीं जो ज़िद को छोड़े;
परीज़ाद से और नहीं जो दिल को मोड़े—
तो तुम काम तमाम वहीं इसका कर देना।
दिखलाने को मुझे कटा सर भी रख लेना" ॥

(२८)

घोर यातना भोग पहुंच कर उसने घर पर—
कहा प्रिया से हाल, जिसे वह पूरा सुनकर—
कहने लगी सहर्ष "आप यों क्यों घबराते ?
मेरे ये वामाङ्ग फड़क कर यह बतलाते ॥

(२९)

"कभी न होगी हार, राम हैं रक्षक अपने।
जय-सपने ही देख रहे हैं भक्षक अपने।
पति की आज्ञा मुझे मान्य है सदा-सर्वदा।
जग में सबसे बड़ी यही है नारि-सम्पदा ॥

(३०)

"कुछ भी नहीं नवाब बुरा कर सकता अपना।
किन्तु परीक्षा-वह्नि बीच अपने को तपना।
कायरता को प्राणनाथ ! अब मत दरसाओ।
कटि को कसके चलो, साथ में मेरे आओ" ॥

(३१)

बैठ गए वे एक स्थान में पहुंच वहां पर—
था सजधज के साथ शान्त एकान्त जहां पर।
आया मस्त नवाब क़ीमती गहने पहने—
नम्रभाव से लगा यही कमला से कहने॥

(३२)

"आओ मेरे पास, मुझे अब मत तरसाओ।
मेरी प्यारी! इसी गले से तुम लग जाओ।
बड़ी शान से तुम्हें बनाऊंगा मैं बेग़म।
फेंक-फेंक कर तीर करो मत मुझको बेदम"॥

(३३)

इतना सुनना था कि बढ़ी वह कमला—माया।
पावक—तेजोमयी हो गई उसकी काया।
उसने धक्का दिया, जिसे वह नहीं सह सका।
चित पड़ कर वह नहीं एक भी शब्द कह सका॥

(३४)

छाती पर वह बैठ गई फिर ले कटार को—
करने वाली उसी समय थी बड़े वार को।
अपराधी ने कहा किन्तु यों हाथ जोड़ कर—
"मादर! मुझको छोड़, आज मत खेल जानपर"॥

(३५)

"तूने मादर अभी-अभी जो मुझे कहा है—
इससे मेरा हाथ तुझे अब छोड़ रहा है।
प्रण कर ले तू आज कभी ऐसा न करूंगा;
हिन्दू-नारि-सतीत्व स्वप्न में भी न हरूंगा" ॥

(३६)

लेकर ऐसा वचन, मान-धन सुयश महत्तर—
रामनाथ के साथ गई कमला अपने घर।
सती-शिरोमणि ! तुझे लेखनी धन्या लिखती।
तुझ जैसी तो हमें आज बस तू ही दिखती ॥

❀ वीरमती की वीरता ❀

(१)

टोडा के राजाधिराज की वीरमती थी तनया एक।
मन्त्र-मुग्ध रहते थे जिसके रूप गुणों पर भूप अनेक।
जिसकी कान्त कांति के आगे कमलकली कलपाती थी।
जिसके सतीपने के सम्मुख महा सती शर्माती थी॥

(२)

जिसका पति जगदेव वीर था धारा-नगरी-राजकुमार।
जिसके बढ़ती ही जाती थी राज्य-वृद्धि की भूख अपार।
उसे बुझाने कई यत्न वह सन्तत करता रहता था।
सुख-सागर में भी बहता था, दुःखों को भी सहता था॥

(३)

अपनी छोटी सी नगरी से वह करके पूरा वैराग्य—
चला गया परदेश कमाने, अजमाने को अपना भाग्य।
प्रिया-मूर्ति ही पथ में उसके आंखों आगे फिरती थी।
उसकी जीवन-नौका भी फिर कभी डूबती, तिरती थी॥

(४)

क्योंकि पिता के घरपर ही तब वीरमती करती थी वास।
निशा-पद्मिनी थी वह रखकर विरह-व्यथा को अपने पास।
इससे पहले वहां गया वह बिदा मांगने प्यारी से।
समता पाने पद्मिनीपति से, सविता से, तमहारी से॥

(५)

मित्रों ने समझाया उसको, दिया बड़े-बूढ़ों ने ज्ञान।
ऊंची-नीची बातों पर भी सबने खींचा उसका ध्यान।
मानी नहीं किसी की कुछ भी पर उस मानी प्राणी ने।
डाला नहीं प्रभाव ज़रा भी उस पर ज्ञानी-वाणी ने॥

(६)

नहीं गहनतम गहनों से भी रुकता था जिसका प्रस्थान।
नहीं बड़े पर्वत भी लाते जिसके पथ में कुछ अवधान।
मत्त-सिंह-सम, निज निश्चय से जो न कभी फिर सकता था।
महा अगाध सिंधु को भी जो पल भर में तिर सकता था॥

(७)

ऐसे उस जगदेव-वीर को वीरमती—लोचन-जल-पात -
सफलीभूत होगया देखो स्वयं डुबोने में अचिरात ।
सत्य प्रेम का एक-एक भी आंसू कैसा होता है !!
महा बली के भी वह बल को स्वीय शक्ति से खोता है ॥

(८)

टप-टप आंसू गिरा, कहा फिर वीरमतीने "सुनिये नाथ !
आज्ञा मुझे दीजिये जिससे करूं आपका मैं भी साथ ।
आज आपको एकाकी मैं कभी नहीं जाने दूंगी ।
रहिये यहीं, आपको मैं कुछ कष्ट नहीं पाने दूंगी ॥

(९)

"मैं कैसे सुख को छोडूंगी, मेरे सुख कहलाते आप ।
स्वामिन् ! कब तक किया करूंगी पड़ी-पड़ी मैं यहां विलाप ।
मेरा जीवन विना आपके फीका होकर सूना है ।
भूमिलोक की भला बात क्या, दिव में भी दुख दूना है" ॥

(१०)

"प्रिये ! ठीक है ऐसा कहना, तुम चलने के सजलो साज ।
मेरे साथ अकेली ही पर चल सकती हो तुमही आज ।
देखें, क्या भगवान दयामय नारी-हट का फल देंगे ।
छोड़ेंगे मझधार हमें, या अङ्क-बीच वे लेलेंगे" ॥

(११)

घोड़ों पर चढ़ कूंच कर दिया दोनों ने कर प्रेमालाप ।
किसी बात का, किसी तरह का उन्हें नहीं था भय-संताप ।
कहीं-कहीं वे भीषण पथ में घोर दु:ख भी पाते थे ।
सिंहादिक पशुओं को भी वे पल में मार गिराते थे ॥

(१२)

पाटन के समीप में पहुंचे एक दिवस वे होकर श्रान्त ।
वहां दिखाई दिया उन्हें फिर स्वच्छ सरोवर-सीमा-प्रान्त ।
रम्य तटों पर लगे हुये थे बाग़-बग़ीचे हरे-हरे—
"हरे-हरे !" करते थे योगी जहां भक्ति से भरे-भरे ॥

(१३)

वीरमती को छोड़ वहां पर एक बडे पनघट के पास—
वह जगदेव गया फिर पुर में गेह ढूंढ़ने सुखद निवास ॥
प्रातः काल हो गया था तब महामोद देने वाला ।
ईश-गुणों के मधुर गान को छेड़ रही थी खग-माला ॥

(१४)

वाराङ्गना एक थी पुर में जामौती था जिसका नाम ।
जो थी महाधनवती जिसका अतिविशाल था धाम ललाम ।
कोतवाल का पुत्र 'लालिया' जिसके घर पर आता था ।
सारी रात वहीं रहता था, मद में मौज उड़ाता था ॥

(१५)

एक दत्त दासी के द्वारा वीरमती की सारी बात—
सही-सही ही शीघ्र हो गई उस कुटिला वेश्या को ज्ञात ।
उसको अपने घर पर लाने वह पनघट पर चली गई ।
भोली-भाली सुन्दर चिड़िया एक फाँसने नई-नई ॥

(१६)

यथा भीलनी मृगी पकड़ने फैलाती है जाल विशाल ।
मक्खी को फुसलाने मकड़ी बुनती है जाले का जाल ।
तथा बहुत सी बातें मन में वेश्या घड़ती जाती थी ।
ठाठ-बाठ से रथ लेकर वह उसके सम्मुख आती थी ॥

(१७)

पास पहुँच वह वीरमती से वाणी बोली मधुर महान ।
"चलो बहिन ! तुम रहो महल में होकर के मेरी मेहमान ।
मैं पाटन के राजेश्वर की पटरानी कहलाती हूँ ।
तुमसे मिलकर आज बहुत ही मैं मनमें हर्षाती हूं ॥

(१८)

"छिप सकता है नहीं छिपाए महाकुलीन तुम्हारा वंश ।
मैं टोढाधिप से परिचित हूं, जो है क्षत्रिय-कुल-अवतंस ।
मुझे जानते श्वसुर तुम्हारे धाराधीश्वर उदयादित्य ।
जो आदित्य-समान नृपों में उदयमान रहते हैं नित्य ॥

(१६)

"सुनो, तुम्हारे पति ने ही यह कह कर सच्चा-सच्चा हाल ।
मुझको बहिन ! यहां भेजा है तुम्हें बुलाने को इस काल ।
पति की आज्ञा को तो पालो, मत मानो मेरा कहना ।
अभी मत चलो, किन्तु अन्त में तुम्हें वहीं आकर रहना" ॥

(२०)

सीधी-साधी वीरमती ने कुलटा को पटरानी मान—
रथ में बैठ कर दिया पल में सहसा ही पुर को प्रस्थान ।
शीघ्र डूबने वाले को तो, है प्रसिद्ध यह सच्ची बात —
तिनके का भी तनिक सहारा अचल-अचल सा होता ज्ञात ॥

(२१)

यही दशा थी वीरमती की, देख वारवनिता-धन-धाम ।
सिद्ध कर रहा था रानी ही उसको उसका विभव ललाम ।
वह तो थी सुकुमारी, धोखा खा जाते हैं बड़े-बड़े ।
कभी चतुर भी चौडे-धाडे लुट जाते हैं खड़े-खड़े ॥

(२२)

वीरमती बोली उससे "मैं यहां करूंगी कब तक वास ?
बहिन ! बताओ कब आवेंगे मेरे प्रियतम मेरे पास ?
उनके दर्शन अभी करा दो यह है मेरी अभिलाषा ।
पूर्ण-मनोरथ मुझे करोगी, है तुमसे ऐसी आशा" ॥

(२३)

"वीरमती क्यों उकताती हो ? होजावेगा यह भी काम ।
अब तुम पहले न्हाओ-धोओ, खाओ-पीओ, लो आराम ।
तुम्हें मिला दूंगी प्रियतम से अभी रात तो होने दो ।
सोजाना गल-बांह डाल, पर चिड़ियों को तो सोने दो ॥

(२४)

"जल्दी करने से क्या होगा, बिगड़ जायगा काम तमाम ।
तुम्हें न कोई दूषण देगा, बस मैं ही हूंगी बदनाम ।
अपने प्रियतम के बारे में कहो न मुझको बारम्बार ।
मैं भी तो पत्नी कहलाती, मेरे भी है प्राणाधार ॥

(२५)

"तुमको ही क्या बहिन ! अनोखी आज जवानी आई है ।
कैसी भूख बढ़ी है, प्रिय की कैसी झड़ी लगाई है ।
ये दो दिन सबके आते हैं, पर कुछ तो रक्खो सन्तोष ।
भरा हुआ रहने पर ही तो अच्छा लगता काया-कोष ॥

(२६)

"जिसको खाली करने को तुम यों मतवाली बनती हो !!
क्यों उतावली होती, देखूं पुत्र कौनसा जनती हो ?
ऐसे तड़प रही हो जैसे चले गये हों बीसों वर्ष ।
मनका भी है ठीक-ठिकाना, बातें ही करलो आदर्श ॥

(२७)

"पीकर के प्याली पर प्याली दे देना इस लाली को ।
लूंगी मैं न, तुम्हीं ले लेना स्वर्ग लोक की ताली को" ।
किसको नहीं जीत सकता है गणिका का वाणी-व्यापार ?
वह तो अति सरला अबला थी सहने वाली दुःख अपार ॥

(२८)

वैश्या ने अपने हाथों से उसका किया बनाव-सिंगार ।
मदिरा-पान कराया उसको, पान दिये देकर आहार ।
कामोद्दीपक बातें कह कर वह उसको हर्षाती थी ।
प्रेमालाप किया करती थी, उसका मन बहलाती थी ॥

(२९)

अर्ध रात्रि में वहां 'लालिया' आया होकर मद साकार ।
बाहर आकर जामौती ने बन्द कर दिए सारे द्वार ।
ऐसे उसने उसी महल में उन दोनों को छोड़ दिया—
साथ एक प्रेमी के अपने नीचे आकर शयन किया ॥

(३०)

मुग्ध हो गया था वह कामी वीरमती का देख सुरूप ।
मार रहा था उसको उसका सजा-सजाया वदन अनूप ।
उसकी बड़ी कटीली आंखें उसको अति तर्साती थी ।
महा क्रोध के तीक्षण बाण भी वे उस पर वर्षाती थी ॥

(३१)

"दूर-दूर तुम क्यो हटती हो, आओ प्यारी ! मेरे पास।
बिना मौत मत मारो मुझको, जो है आज तुम्हारा दास।
आकर पास गले लग जाओ, क्यों विलम्ब अब करती हो ?
क्यों न प्रेम से अब तुम मेरी काम-व्यथा को हरती हो" ॥

(३२)

"तू मत छूना मेरे तन को अरे कुटिल-कामी-चाण्डाल !
तेरे सिर पर नाच रहा है पापी ! तेरा काल कराल।
पर-नारी पर हाथ उठाता तू क्यों नहीं लजाता है।
एक सती को, पतिव्रता को तू क्यों नीच ! सताता है" ?

(३३)

"अजी सतीजी ! क्यों पावेगा सतियों में तब आज सतीत्व—
जब कलियुग की दुनियां में है यतियों में भी नहीं यतीत्व ?
नरक-कुण्ड में पड़ कर भी तू स्वर्गमयी कहलाती है !!
तुझ जैसी ही सती अनोखी वैश्या के घर आती है ॥

(३४)

"मैं जो तुझसे कहूं उसी को तू कर ले मुद से स्वीकार—
वरना तेरे दो टुकड़े अब करती है मेरी तलवार।
मैं जो तुझको एक बार भी आज अङ्क में ले लूंगा—
तो तुझको पटरानी से भी बढ़ कर कल ही कर दूंगा ॥

(३५)

"प्यारी ! आजा, कहना करले मत करवा अपना बलिदान ।
पर-मानस की तृप्ति पुण्य है, आत्मघात है पाप महान ।
उसकी नमकहरामी मत कर जिसकी रोटी खाई है ।
वह तो तुझको इसी काम के लिये यहां पर लाई है ॥

(३६)

"मैं प्रेमी हूं जामौती का जो नामी गणिका है एक ।
प्रति दिन एक सुन्दरी लाकर वह रखती है मेरी टेक ।
रूपवती तुझ जैसी मुझको किन्तु आज तक मिली नहीं ।
इससे मेरी तृप्ति बिना तू अब जा सकती नहीं कहीं" ॥

(३७)

वीरमती अब नहीं सह सकी भड़क चुकी थी उसमें आग ।
उसने उसकी असि से उसके तनके कई कर दिए भाग ।
उनकी गठरी एक बांध कर उसे मार्ग में फेंक दिया ।
इस प्रकार कलि में भी उसने सतीधर्म को निभा लिया ॥

(३८)

आया जब मध्यान्ह काल में वह जगदेव लिये आहार ।
वीरमती को वहां न पाकर मनमें दुःखित हुआ अपार ।
वापस ही वह वीर नगर में चला गया फिर खड़ा-खड़ा ।
किन्तु कहीं भी नहीं प्रिया का उसको कुछ भी पता पड़ा ॥

(३९)

यहां-वहां वह रहा घूमता भूख-प्यास से हो बेहाल ।
राजद्वार-समीप अन्त में पहुंच गया वह प्रातःकाल ।
वहां खड़ा था कोतवाल भी कहने नृप से हाल नया ।
सुनकर जिसकी करुणकथाको वह निज दुखको भूल गया ॥

(४०)

जामौती के घर पर पहुंचे वे दोनों राजा के साथ ।
उन्हें देख गणिका फिर बोली -"न्याय कीजिये मानवनाथ ।
इस ऊपर के बड़े महल में वीरमती हत्यारी है ।
जिसने मार 'लालिया' जी को पाप कमाया भारी है ॥

(४१)

द्वार खोल अब वीरमती भी आई अपने पति के पास ।
जिसका सब वृत्तान्त श्रवण कर भूप होगया बहुत उदास ।
दे वेश्या को देश निकाला नृप ने उनका मान किया ।
फिर ऐसे आदर्श युगल को निज समीप में वास दिया ॥

(४२)

सतीशिरोमणि वीरमती के उज्ज्वल यश का महा प्रकाश—
फैला हुआ रहेगा तब तक जब तक है मानव-इतिहास ।
इसको धन्या-धन्या कहकर, दीप सत्य का जोकर के—
लेती है विश्राम लेखनी पावनतम अब हो करके ॥
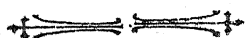
निशा-अकेली

गगन-गेहसे बाहर आकर तू बल से बल खाती है ।
काले–काले केशों को तू फैलाती, उलझाती है ॥
हीरों को, फूले फूलों को उनके बीच लगाती है ।
वसुधा को चमकाने उनको तू चम-चम चमकाती है ॥
जीवन–वीणा के तारों को तू ढीला कर जाती है ।
ज्ञानी-वाणी की वाणी को मौन हार पहनाती है ॥
नींद-नदी में तू स्वप्नों का जंगी जाल बिछाती है ।
नीरवता के रत्नाकर में पीछे उसे बहाती है ॥

साथ सभी के खेली है
पर तू सदा अकेली है ॥१॥

तू प्रत्येक दिवस मर जाती और जन्म भी पाती है ।
देकर के विश्राम विश्व को उसकी शक्ति बढ़ाती है ॥

योगी, भोगी, भूत, प्रेत सब चोरों को हर्षाती है ।
कमलों को मुर्झाती है तू कुमुदों को विकसाती है ॥

संख्यावानों के नयनों को नभ में नाच नचाती है ।
मदमाती है तू प्रशांति का फिर भी राज्य जमाती है ॥

विधु-वदनी होकर भी तो तू काली—काली भाती है ।
पुण्य प्रभात-पुत्र को जनकर तू वंध्या कहलाती है ॥

बहुत बड़ी अलबेली है
तू ही निशा-नवेली है ॥२॥
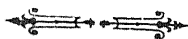
तू फैलाती नभ में आकर घटा-छटा काली-काली ;
तुझसे ढ़क जाती है चम-चम तारों की जाली-जाली ।
माली-माली मोद-युक्त है देख ग्रीष्म की पैमाली ;
कृषक सुखी हैं लख खेतों में हरियाली-ही-हरियाली ।
हे सुविशाला जल-शाला !
हे मृदु-मंजु मेघ-माला !

(२)

महामनोहरता की हमको मिल जाती ताली-ताली ;
मंजु मोतियों से खिल जाती पत्तों की थाली-थाली ।
मद से भरती खूब लबालब फूलों की प्याली-प्याली ;
हरे-हरे वस्त्रों से सजती वृत्तों की डाली-डाली ।
दया-आर्द्रता--प्रण पाला—
तूने हे नीरद-माला !

(३)

प्रकृति-नटी की भर जाती है रत्नों से झोली-झोली ;
सुधा-सनी-सी होजाती है कोकिल की बोली-बोली।
अलि-अलि को निज रूप लुटाती कली-कली भोली-भोली।
ताली दे-दे नाच नाचती मौरों की टोली-टोली।
पिला रही जीवन-हाला—
तू मेघों की बन माला!

(४)

जीव-मात्र को मोहित करता तेरा यह जादू-टोना ;
बगुलों का उड़ना होता है बीजों का होता बोना।
जली-भुनी-सी पृथ्वी का भी मिट जाता रोना-धोना ;
कूप-नदी-नद-नदीनाथ का भर जाता कोना-कोना।
कौन 'हिंद' का रखवाला—
तेरे विना मेघ-माला!

(५)

फूल खिलानेवाली है तू, आम खिलानेवाली है ;
सुधा पिलाने वाली है तू, हमें जिलानेवाली है।
मोती बरसानेवाली है, तू तरसानेवाली है ;
मेघश्याम 'घनश्याम'-प्रेम में तू 'बरसानेवाली' है।
तेरा रहे बोलबाला ;
धन्य धन्य हे घनमाला!
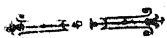
फूला हुआ फूल

(१)

पहले शाखा–दल लहराया।
जिससे निकली तेरी काया।
फलने तुझसे फलना पाया।
जिसमें तरु का बीज समाया।
जो पीछे हो जाता मूल।
क्यों तू फूल रहा है फूल ?

(२)

आजा मेरे करमें आजा।
अपना गौरव-मान बढ़ाजा।
मेरे प्रिय का रूप दिखाजा।
अभी--अभी तो तू है ताज़ा।
फिर चाटेगा वन की धूल।
क्यों तू फूल रहा है फूल ?

(३)

पुण्य एक आड़ा आता है।
रूप-रङ्ग सब उड़ जाता है।
क्यों तू इतना इतराता है?
क्यों तू ऐसा उकताता है?
है सुदूर भव—सागर—कूल।
क्यों तू फूल रहा है फूल?

(४)

अलियों की माला की माला—
लेकर तेरी सुरभित हाला—
पीती है प्याला पर प्याला।
वह मतवाली, तू मतवाला।
पर तू मत अपने को भूल।
क्यों तू फूल रहा है फूल?

(५)

लाभ स्वजीवन का पावेंगे।
मोद-विनोद मेघ छावेंगे।
सुख की निधियां वे लावेंगे।
मेरे प्रियतम जब आवेंगे।
तब तू फूल किंतु अब शूल।
क्यों तू फूल रहा है फूल?

(६)

सदा कहां सुख में हिलना है ?
तुझको भी दुख में पिलना है ।
दो दिन का ही यह खिलना है ।
पीछे मिट्टी में मिलना है ।
क्यों तू रहा गर्व में भूल ?
क्यों तू फूल रहा है फूल ?

❁ निर्मल नर्मदा ❁

(१)

नर्मदा अमला होकर है
शांतिदा भारत में वैसी;
स्वर्ग में मन्दाकिनी नदी
कांतिदा कहलाती जैसी ॥

(२)

कष्ट—कण्टक को हरने यह
अमरकण्टक से बहती है।
मध्यभारत को अमर बना
मध्य में उसके रहती है ॥

(३)

भक्त इसके जलपातों से
पात हैं पुण्यों का लेते।
पातकी पातक—पावक को
उन्हीं से स्वयं बुझा देते॥

(४)

भारती—यमुना—गङ्गा का
पापहर मञ्जुल मज्जन है।
किन्तु कर इसके दर्शन ही
दुष्ट हो जाता सज्जन है॥

(५)

स्नान जो कर-कर के इसमें
नर्मदेश्वर—गुण गाते हैं;
मुक्त बन हंसयान से वे
महेश्वर सम्मुख जाते हैं॥

(६)

शम्भु-शिर चढ़ कर भी गङ्गा
देखकर इसको रोती है।
क्योंकि यह शिव के तनु से ही
आप उत्पन्ना होती है॥

(७)

तटों पर इसके लहलाती
गन्ध-युत सुन्दर हरियाली ।
छिपा लेते गिरिमाला से
जिसे हैं ईश्वर वनमाली ॥

(८)

कहीं जल पल-पल पड़ता है
कहीं वह कल-कल कर बहता ।
सिद्ध कर शब्द-ब्रह्म को वह
सँदेसा शिव का है कहता ॥

(९)

कहीं पर नावें चलती हैं
कहीं जलजात फूलते हैं ।
कहीं हैं मन्द गन्धवाही
कहीं खग-भृङ्ग झूलते हैं ॥

(१०)

विन्ध्य के गहनों में होकर
गहन सागर में जाती है ।
तारकर कई पापियों को
स्वयश को यह फैलाती है ॥

(११)

लोक में मुक्तिदायिनी यह
सुधाकर—सुता कहाती है ।
सुधा—धारा को वसुधा पर
इसी से सदा बहाती है ॥

(१२)

कहीं पर भी माहात्म्य नहीं
मिलेगा इससे और बड़ा ।
स्पर्श से इसके होजाता
महेश्वर पत्थर का टुकड़ा ॥
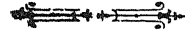
❀ इतिहास का इतिहास ❀

(१)

क्या है वेदव्यास-व्यासकृत चारों वेदों का सुविकास—
माया का, मायानायक का, मनुज प्रकृति का है इतिहास।
अद्वितीय इतिहास ग्रन्थ ही कहलाते हैं सभी पुराण।
तत्वों का इतिहास अनूठा माना जाता है विज्ञान॥

(२)

जनकनंदिनी-रघुनन्दन का कविगण-विरचित चारु चरित्र—
रामायण के रम्यरूप में है मोहन इतिहास पवित्र।
मन्जु महाभारत तो है ही भारत का इतिहास-निधान—
जिसमें सुन्दर शैली द्वारा है अनुपम आख्यान-विधान॥

(३)

कहने में कैसे आवेगा अकथनीय इतिहास महत्व।
सूक्ष्म रूप से विद्यमान है विषय-सत्व में इसका तत्व।
भावों का इतिहास कहाता काव्य-कला-साहित्य-विलास।
ज्योतिष भी तो नक्षत्रों का, नवग्रहों का है इतिहास॥

(४)

जो इतिहास नहीं होता तो कैसे बढ़ता ज्ञान ललाम।
नहीं किसी को लेना आता अपने पूर्वजनों का नाम।
कौन जानता सम्राटों के अधः पतन के कारण-कार्य।
राजाओं में कैसे आते यश के हेतु क्षमा-औदार्य॥

(५)

विना रीतियां जाने कैसे जय पाते रणमें वर वीर?
विज्ञ-चरण-चिन्हों के दर्शन कभी न कर सकते थे धीर।
भूत-ज्ञान से ही सम्भव है वर्त्तमान-सन्मार्ग-सुधार।
होजाता इतिहास विना तो अस्तव्यस्त सभी संसार॥

(६)

मानव-प्रकृति-चित्र-शाला बन यह है विषयों का मूर्धन्य।
इसका पूरा पंडित, प्रेमी मान्य बुधों में भी है गन्य।
जो इतिहास-तत्व के ज्ञाता, ग्रन्थ-विधाता, यश-गुणधाम—
ऐसे पूजनीय को कवि भी क्यो न करेगा नम्र प्रणाम॥
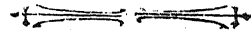
❀ विश्व-वैचित्र ❀

(१)

अरबों आदित्यों से भी जो बहुत अधिक है तेजनिधान—
ऐसे एक विराट् दीप से जो है सदा स्वयं द्युतिमान—
अन्धकार ही अंधकार का निकला भीषण भार अपार—
जिससे सारी सृष्टि ढक गई निराकार का बन आकार ॥

(२)

मायामय की मञ्जुल माया करती रहती अद्भुत खेल—
जिनसे होनी-अनहोनी का मिलजाता है अनमिल मेल।
इसके द्वारा महा ज्योति से तम का होता प्रादुर्भाव।
तम से महाज्योति प्रकटाना है बस इसका मन-बहलाव ॥

(३)

तमोमयी में क्या होता है अब तक इसका कुछ अनुमान—
नहीं कर सके ज्ञानी-ध्यानी-मुनि-महर्षि-मानी-विद्वान ।
दिव्य ज्ञान से, या वितर्क से यह है एक परे की बात ।
इसको महा प्रलय कहते हैं या यह है ईश्वर की रात ॥

(४)

निज में सब लोकों को लय कर, जो हैं सात, चार फिर तीन ।
लीलाधारी होजाते हैं महायोगनिद्रा में लीन ।
वे ही एक जानने वाले हैं बस इसका पूरा भेद ।
जिसे न खोला वेदों में भी किसे नहीं है इसका खेद ॥

(५)

चराचरों ने ग्रहण कर लिया क्षय होकर पृथ्वी का रूप ।
पृथ्वी जल में बदलगई, जल शीघ्र होगया अग्नि अनूप ।
अग्नि वायु में, वायु व्योम में पलटगया फिर पूरंपार ।
व्योम होगया आत्मा, आत्मा परब्रह्म-परमात्माकार ॥

(६)

परमेश्वर ने इस प्रकार से कल्पों तक रहने को शान्त—
सृष्टि-स्थिति-दर्शक निज दिनका स्वयं करदिया था दुःखान्त ।
तम ही तम सर्वत्र होगया, दशों दिशाओं का भी लोप ।
महा रात्रि से दिया दिखाई महाविष्णु का नाशक कोप ॥

(७)

सञ्जिहीर्षा* की समाप्तिपर नींद खुल गई अपने आप।
अपनी नाशशीलता पर फिर किया ईश ने कुछ सन्ताप।
जागी सिसृचा× मानस में जिससे द्युतिमय-गोलाकार—
एक अण्ड उत्पन्न होगया करने आदि सृजन-व्यापार॥

(८)

इसके दो भागों से सारे अन्धकार का होकर नाश—
चौदह लोक होगए जिनके मध्य जलधि थे नीलाकाश।
पहले मत्स्य, सरीसृप पीछे होने लगे यहां उत्पन्न।
फिर मनुजों ने जीवन पाया करने ग्रहण सुजीवन-अन्न॥

(९)

सर्व-कर्म-शीला होकर भी अंधी प्रकृति करे क्या काम?
दर्शक होकर क्या कर सकता क्रिया-हीन भी पुरुष ललाम?
इससे अन्धी के कन्धे पर बैठा रहता पङ्गु प्रवीण।
नाच नचाता उसे अनोखे बन समर्थ वह शक्ति-विहीन॥

(१०)

प्रकृति-पुरुष के इस नियोग से होजाती है सारी सृष्टि।
उसे चलाती रहती सन्तत फैल-फैल कर इसकी दृष्टि।
कई मानते प्रकृतिमात्र के किए हुए हैं सारे कर्म।
वेद बताते एक पुरुष ही पालन करता तीनों धर्म॥

---

* संहार की इच्छा। × सृष्टि करने की अभिलाषा।

(११)

इस रहस्य का उद्घाटन तो नहीं किसी से होता स्पष्ट।
इसके बड़े फेरमें पड़कर सब की मति होजाती नष्ट।
किन्तु बात यह सदा सही है कभी एक वह कभी अनेक।
जिससे बड़ी न कहीं कहानी दुनियां वही कहानी एक॥

शासन-सौंदर्य

(१)

हुताशन—मात्र लगाना है
जमाना घर में पर आसन;
स्वर्ग में ठीक, नहीं भू पर
पाकशासन का भी शासन ॥

(२)

चंचलानलधारी घन भी
अनल का क्षय कारक ही है;
मृगाधिप बन हरिणेंद्र सदा
मृगों का संहारक ही है ॥

(३)

नीम से कटुता मधु पीकर
तनिक भी कभी नहीं हटती;
दया के संस्कारों से क्या
क्रूरता-जाति कहीं घटती ? ॥

(४)

नहीं जब स्वाधिकार पूरा
आह ही है केवल भरती;
रहेगी तब ही वह सुख में
प्रजा जब निज शासन करती ॥

(५)

कष्ट जो अपने हैं, उनको
हाथ अपने ही खो सकते;
पराए हाथ पराये हैं
नहीं जो अपने हो सकते ॥

(६)

मधुर जब अद्भुत रत्नाकर
प्रजा-शासन का लहराता —
शांति की सीपी में तब ही
मोद का मोती बन जाता ॥

(७)

प्रजा-शासन के घन से ही
दनादन पड़ते हैं ओले—
फूट की निशाचरी को जो
मारते बनकरके गोले ॥

(८)

यमालय होकर अरियों का
आत्मबल का जो आलय है—
देश की ढाल बना रहता
प्रजा का राज्य हिमालय है ॥

(९)

सौख्यकर, तेजाकर होकर
ज्ञान-गुण का जो आकर है—
भीरुता--तिमिरासुर—हारक
प्रजा का राज्य दिवाकर है ॥

(१०)

ताप से जिसके जल जातीं
लताएं दुःख—दीनता की—
दासता—दूर्वा क्षय होती
कुमुदिनी महाहीनता की ॥

(११)

बँधा है जिससे भव-सागर
बड़ा ही होकर व्याकुल है—
पार जो सबको कर देता
प्रजा-शासन ही वह पुल है ॥

(१२)

प्रजा—शासन की गंगा को
देश को जो लाकर देता—
एक ही वह हो सकता है
भगीरथ जग-जेता नेता ॥

भूख-भवानी

(१)

रचना, पालन और नाश की जिनके रहती भूख अनूप—
जो कहलाते भव्य भूमि पर भूखों के भी भूषित भूप—
ऐसे वे भगवान भूतिमय भूखे और त्रिलोकीनाथ—
मेरे जन्म-मरण को खावें सारे अघ-विघ्नों के साथ ॥

(२)

जिसका पिता लोभ कहलाता ममता जिसकी माता है ।
जिसका स्वामी स्वार्थदेव है कामदेव लघु भ्राता है ।
ऐसी भूख-भवानी भव में मायारूपा होती है—
जो बोती है व्याधि-बीज को पावन पद को खोती है ॥

(३)

जिसके वशीभूत रहते हैं बुद्धिमान, बलवान महान—
वित्तवान, गुणवान, साहसी, शक्तिवान, अति महिमावान ।
यह है ऐसी महा मोहिनी जिसके जड़-जङ्गम बन दास—
हाथ जोड़ कर खड़े हुए हैं श्वास-श्वास में ले निःश्वास ॥

(४)

योगी भूखा पूर्ण मुक्ति का भोगी भीषण भोगों का ।
रोगी भूखा स्वास्थ्य-लाभ का जोगी लम्पट लोगों का ।
प्राणी सुख का भूखा होगा, यश का भूखा दानी है ।
ध्यानी तप का भूखा होता धन का भूखा मानी है ॥

(५)

इन्द्रासन की भीम भूख को रखता है अमरेन्द्र महेन्द्र ।
भू-वैभव की बड़ी भूख से पीड़ित रहता है भूपेन्द्र ।
धीर वीर भी हो जाते हैं विजय-भूख के वश्य अवश्य ।
ज्ञानी को भी हरा रहा है इसके बल का गूढ़ रहस्य ॥

(६)

भूखों ही भूखों से भर कर यह सब दुनियां भूखी है ।
यह रस वाली दीख रही है तो भी लूखी-सूखी है ।
चमक रही है, किन्तु भूख से यह अँधियारे वाली है ।
उज्ज्वलवर्णा होकर भी तो यह काली ही काली है ॥

(७)

अजर-अमर कहलाकर भी तो भूखे सुर लेते बलिदान ।
चन्द्र-सूर्य को चट कर जाते कपटी राहु-केतु बलवान ।
कुम्भज के उदरस्थ होगया बन अपार भी पारावार ।
सार यही, संहार-भार का एक भूख ही है आधार ॥

(८)

सब लोकों में भूख-भवानी अद्भुत शक्तिधारिणी है ।
भूतनाथ-भव-नाश-शक्ति के बल का गर्वहारिणी है ।
जो न हट सके इसकी ऐसी धाक सभी पर जमती है ।
विश्वव्यापिनी यह पिशाचिनी रोम-रोम में रमती है ॥

(९)

निराकार होकर भी तो यह रखती है नाना आकार ।
खा-पीकर फिर खाने को यह और मचाती हाहाकार ।
तृष्णा, तृषा, लालसा, लिप्सा कहते हैं इसको ही काम ।
विष्णु-नाम-सम इसके भी तो गिने न जाते नाम ललाम ॥

(१०)

एक न एक बात की सबको भूख लगी ही रहती है ।
चारु-अचञ्चल-चित्त-वृत्ति भी भूख-सिंधु में बहती है ।
है यह भूख जीव की भूखी, वह भी इसका भूखा है ।
यह उस पर ही सदा मरेगी वह भी जिसका भूखा है ॥

(११)

अहो ! भूख भी भूखों मरती कैसी अद्भुत है यह बात ।
भूख हमारी खाती है या हम भी खाते हैं दिन-रात ।
खाकर कोई व्यक्ति किसी का कभी नहीं कर सकता नाश ।
वह परिवर्तन ही होता है, फिर क्या भूख और क्या प्यास ?

(१२)

इसका भेद किसी मानव के नहीं समझ में आया है ।
क्षय में स्थिति कैसे रहती है, स्थिति में नाश समाया है ।
नहीं एक अणु की भी कोई नई सृष्टि कर सकता है ।
जिसकी सृष्टि होगई उसको क्या कोई हर सकता है ?

(१३)

भूख भूख से ही बढ़ती है, सदा अपरिमित इसकी वृद्धि ।
जिसके कारण रुक जाती है शांतिदायिनी सिद्धि-समृद्धि ।
इसी भूख से हो जाते हैं बड़े-बड़े भीषण संग्राम ।
इसके बढ़ जाने से मिलता नहीं नाम को भी आराम ॥

(१४)

है बस यही महाभारत को भारत में करने वाली ।
पुण्य भूमि की पुण्य कीर्ति को, वैभव को हरने वाली ।
खोटे-खोटे मार्ग जीव को यही बताने वाली है ।
सब से पहले ईश्वर को भी यही सताने वाली है ॥

(१५)

जिसके पीछे यह पड़ जाती रहता वही सदोष, सरोष ।
इसे छकाने वाला जग में है इसका वैरी सन्तोष ।
सन्तोषी ही सदा सुखी है, पाता वह आनन्द अमन्द ।
भूखे के हित द्वार स्वर्ग का होजाता है पल में बन्द ॥

(१६)

अरी भूख ! तुझसे भी होता अब मेरा छुटकारा है ।
वे ही तुझको नष्ट कर रहे जिनका मुझे सहारा है ।
जिनकी आज्ञा से स्थित रहती यह ब्रह्माण्ड-महत्ता है—
श्रीफल फलता, नीरज खिलता, हिलता पत्ता-पत्ता है ॥
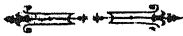
❀ निद्रा-निर्णय ❀

(१)

नींद ! तेरे वश्य हैं वे आलसी
काम जिनको कुछ नहीं संसारमें ।
दिव्य दिन की रात वे कर डालते
वृद्धि करने के लिये भू-भारमें ॥

(२)

कौनसा है देश तेरा विश्वमें
कौनसे परिवारका आधार है ?
कौनसा घर-बार है, आगार है
कौन-से आकारका श्रृङ्गार है ? ॥

(३)

हे नवोढा! खिल नहीं सकती कभी
एक तुझसे वृद्धजन-मन की कली ।
रमण करती तू तरुणके साथमें
बालकों की तू बहुत है लाडली ॥

(४)

लोक की कर्मण्यताका नाश ही
एक तेरा बन रहा व्यापार है।
जो हराता देह को, जयकार वह
कौनसा तेरा बड़ा हथियार है ॥

(५)

हाव-भावोंके लिये तू हाव है
पास*का भी पा सका क्या पारको ?
गूंथती तू लोल पारावार बन
स्वप्नरूपी मोतियोंके हारको ॥

(६)

तू श्रमीपर वृष्टि करती सौख्यकी
शीघ्र हरती है परिश्रम-खेदको ।
तू भुला देती सभी सुख-दुःखको
खोलती है तू नहीं निज भेदको ॥

---

* जो तेरे समीप है अर्थात् सोनेवाला ।

(७)

चोरको भी मातकर पलमात्रमें
तू बिछाती है अनूठे जालको।
हो रही गजगामिनी भी लज्जिता
देख करके चारु तेरी चालको॥

(८)

मृत्युकी छोटी बहिन तू होरही
पर तुझे भी वह कभी खा जायगी।
क्या करेगी तब यहां पर तू बता
नींद! तुझको नींद जब आ जायगी?

(९)

खूब अपनी आंख दोनों बंद कर
जो लगाता आंख+है तुझसे सदा–
आंख खुलनेपर खुली जब आंख*तो
क्या करे वह, लुटगई जब सम्पदा॥

(१०)

रात-दिन जो दास तेरा हो रहा
और सुख की नींद भी जो सो रहा–
खो रहा वह हर्षको, अपने लिये
कष्टके कांटे कटीले बो रहा॥

+ प्रेम करता है। * जब ज्ञान आया।

(११)

जागना ही चाहिये संसारमें
खूब सोना लक्ष्य खोनामात्र है।
सो रहा था नीदमें, जागा नहीं
मिल गया इससे मुझे यह गात्र है॥

(१२)

काम जो मेरा उसीकी पूर्तिको
तू मुझे पल भी भुला सकती नहीं।
नीद आती देहको ही नित्य है
नीद! तू मुझको सुला सकती नहीं॥
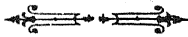
मृत्यु-मीमांसा

(१)

मृत्यु ! तुझसे होरहा भयभीत वह
जो कहाता कायरों का भूप है।
भीति तुझसे है मुझे तब भी नहीं
जब कि तेरा अति भयङ्कर रूप है॥

(२)

जन्म ही जिसका नहीं संसार में
क्या करेगी तू बता उसके लिये ?
आदि जिसका है नहीं, उसका कभी
अन्त भी होगा नहीं तेरे किये॥

(३)

आज तेरे और मेरे, सोच तू
क्या परस्पर बँध रहा सम्बन्ध है ?
मानता जो, मारती है तू मुझे
मानवों में मूढ़तम वह अन्ध है ॥

(४)

क्या कभी मुझ पर किसी भी रीतिसे
तनिक भी अधिकार तेरा है जमा ?
तब+ अमा भी पूर्ण है राका-रमा
जब मनोरम मन रमापति में रमा ॥

(५)

मैं वहां पर भी न डर सकता कभी
साथ तेरे भीति भी डरती जहां।
मैं वहां पर भी न मर सकता कभी
मृत्यु ! तेरी मृत्यु भी मरती जहां ॥

(६)

आजतक तूने पता पाया नहीं
विश्वहारी इस विभीषण भेद का।
नाम मेरे नाश का बदनाम है
किन्तु होता क्षय नहीं है देह का ॥

+ परमात्मा में मन लगजाने पर जीवन-मरण समान हैं

(७)

जो बनाते गेह पांचों तत्व मिल
देह का ही नाम है उसको दिया।
होगये जब वे अलग तो होगये
मृत्यु ! तूने कुछ नहीं उनका किया॥

(८)

सिन्धु में, हिम में, मही में और फिर
जलद में भी एक ही है जल वही।
कल रहूंगा मैं वही जो आज हूं
आज जो हूं मैं रहूंगा कल वही॥

(९)

तू जहां पर आ नहीं सकती कभी
मैं महा-आनन्द में बसता वहीं।
हो भले ही ज़ोर तेरा देह पर
मैं जिसे मेरी कभी कहता नहीं॥

(१०)

दूर से ही दण्डवत मैं कर रहा
आज तुझको और तेरी घात को।
मृत्यु ! मेरा तू नहीं कुछ भी कभी
कर सकेगी, याद रख इस बात को॥
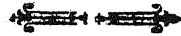
श्मशान-सौंदर्य

(१)

भूतनाथ का, भूतगणों का, भय का भीषण वासस्थान-
अरे श्मशान! होगया होगा तुझपर कितनों का अवसान ?
कैसा निर्दय, हृदयहीन बन तू करता है पापाचार-
जिसे देखकर भीषणता भी रोदेती कर हाहाकार ॥

(२)

जिनकी देख दुर्दशा होते कम्पमान भूगोल - खगोल-
ऐसे लालों को तू खाता लालों से भी जो अनमोल।
भुवनविमोहन माना जाता जिनका तनु-सौन्दर्य-विकास-
ऐसी रमणीमणियों का भी तू करदेता पल में नाश ॥

(३)

जिनके सम्मुख रणमें आकर यम भी भय खाता भरपूर-
ऐसे धीर-सुवीरों का भी तू कर देता चकनाचूर।
तू करता है काम भयङ्कर, दृश्य दिखाता है विपरीत-
जिनकी देख विभीषणता को भय भी होजाता है भीत॥

(४)

कहीं चिताएं चुनी जारहीं, कहीं लेरहे जन विश्राम।
कहीं कपाल-क्रिया होती है, कहीं अस्थि-सञ्चय का काम।
कहीं धनञ्जय धक-धक करता, कहीं पड़ रहा उसपर पाथ।
कहीं पुत्र को पिता जलाता, कहीं प्रियाको उसका नाथ॥

(५)

कहीं काक को बलि देते हैं, होता कहीं तिलाञ्जलि-दान।
कहीं स्नान, हरिध्यान होरहा, कहीं छिड़रहा है विज्ञान।
कहीं शवों को गाड़ रहे हैं, कहीं खोदते गर्त्त महान।
कहीं-कहीं बैठे रोते हैं धैर्यवान-बल—साहसवान॥

(६)

अरे पितृवन ! गर्व न करना, शक्ति नहीं कुछ तेरे पास।
खूब याद रख, तू कर सकता नश्वर का भी कभी न नाश।
पल-पल का यह परिवर्त्तन है, रूप भेद है इसका सत्व।
कभी दीखते एक, कभी हैं अलग-अलग ये पाचों तत्व॥

स्नेह और सौन्दर्य

(१)

स्नेह :—

अरे हे सौंदर्य ! गर्व की गरिमा तू है।
आकर्षणकी, हाव-भाव की प्रतिमा तू है।
भूमण्डल पर जन्म व्यर्थ ही तूने पाया।
मायाकर ! तू यहां छत्र-छाया-सम छाया॥

(२)

जो तुझको हैं स्वस्थ देह पर रखने वाले—
वे जन-मन को मोह स्वयं होते मतवाले।
पञ्चबाण के तीक्ष्ण बाण तू चला-चलाकर—
लेलेता है प्राण प्रेमियों के पावनतर॥

(३)

कैसा निर्दय, क्रूर, कलङ्की तू अभिमानी।
तुझे देखकर ज्ञान छोड़ देते हैं ज्ञानी।
तूने भ्रष्ट चरित्र किया नाना पतियों का।
तूने ही क्षय किया कई सुन्दर सतियों का॥

(४)

फैलाकर जंजाल-जाल तू डटा खड़ा है।
जिसका बन्धन लिए हृदय में बड़ा कड़ा है।
तेरा मान महान हो रहा मेरे कारण।
इससे कर तू आज स्वमद को शीघ्र निवारण॥

(५)

सौन्दर्य :--

मेरी सुन हे स्नेह ! झूठ है तेरा कहना।
मैं ही हूं अनमोल सभी जीवों का गहना।
मुझसे यह संसार सारयुत कहलाता है।
तू भी तो निज कीर्ति–वृद्धि मुझसे पाता है॥

(६)

पूर्ण ब्रह्म का रूप, मूर्ति हूं मैं माया की।
मैं ही हूं कमनीय कांति सुर-नर काया-की।
मेरी मोहन-शक्ति त्रिलोकी पर जय पाती।
ब्रह्मा, विष्णु, महेश, इन्द्रपर जोर जमाती॥

(७)

मेरे कारण मान, मान तू, होता तेरा।
ऊंचा ही है सभी गुणों से आसन मेरा।
हैं मेरे पदपद्म सभी से पूजे जाते।
मेरे आगे बड़े-बड़े जन शीश झुकाते॥

(८)

जो मैं होता नहीं लाभ क्या लोचन लेते?
वे कुरूपता-सिन्धु-मध्य ही निज को खेते।
मैं हूं पावन-श्रेष्ठ, विश्व है मुझपर मरता।
पर तू तो है दुष्ट अन्ध जो सबको करता॥

(९)

स्नेह :—

तू ही है सौन्दर्य! हृदय का भेदन करता।
तू स्नेही के अङ्ग-अङ्ग का छेदन करता।
दो दिन के ही लिए यहां पर तू आता है।
फीका पड़ कर और अन्तमें उड़जाता है॥

(१०)

सुधा दीखता शुद्ध किन्तु तू विष से बढ़कर।
मोहन होकर बना हुआ है मणिधर विषधर।
डाढ-दांत के विना तुझे है डसना आता।
अस्त्र-शस्त्र के विना मारता तू न अघाता॥

(११)

मैं हूं शान्त स्वभाव मुझे भी तू भड़काता।
जीव जलाने स्वच्छ हृदय में आग लगाता।
हरि भी होते वश्य शीघ्र ही मेरे द्वारा।
विघ्न डालता किन्तु मार्ग में तू हत्यारा॥

(१२)

होते तुझपर मुग्ध तपस्वी छोड़ तपस्या।
हल होती तेरी न किसी से कभी समस्या।
तुझसे पड़ता कर्म—धर्म का उलटा पासा।
होवे तेरा नाश यही मेरी अभिलाषा॥

(१३)

सौन्दर्य :—

मेरे क्षय से स्नेह ! तुझे क्या मिल जावेगा ?
क्या आवेगा हाथ और क्या फल पावेगा ?
मेरे द्वारा मान-सुयश बढ़ जाता तेरा।
तुझको हितकर सदा यहां पर रहना मेरा॥

(१४)

जो मैं होता नहीं अकेला तू क्या करता ?
दर्शनीय ही दृश्य स्नेह को मनमें भरता।
होकर शोभाहीन विश्व फिर किसको भाता ?
विधि-रचना-चातुर्य धूलिमें सब मिलजाता॥

(१५)

कामदेव का ज़ोर किसी पर कैसे चलता ?
तू भी हो असहाय हाथ ही अपने मलता।
सभी सृष्टि में एक देखने लायक मैं हूं।
सूक्ष्म दृष्टि को सौख्य-वृष्टि का दायक मैं हूं॥

(१६)

तूही तो बदनाम मुझे है करने वाला।
मेरी सुन्दर सार-वस्तु को हरने वाला।
तेरे कारण कई दोष मुझमें आजाते।
मुझको लेते लूट स्नेहवाले मदमाते॥

(१७)

कवि :—

कहिए वाचकवृंद ! किसे अब श्रेष्ठ कहें हम ?
इनमें छोटा-बडा कौन शिव-सत्य-मनोरम ?
लेते हैं धीमान कई तो पक्ष स्नेह का।
इष्ट होरहा कहीं-कहीं सौन्दर्य देह का॥

(१८)

रम्य कांतिमय रूप किसी के दर्शनीय है।
पावन-पक्का प्रेम कहीं पर पूजनीय है।
तनु-शोभाने किया किसी को स्वीय उपासक।
कहीं हृदय का सत्य स्नेह होजाता शासक॥

(१९)

जहां स्नेह-सौन्दर्य साथ दोनों रहते हैं।
वही मेल है श्रेष्ठ यही पंडित कहते हैं।
प्रेम हृदय को, रूप देह को जो पाजावे।
तो सोने में गन्ध आपही फिर आजावे॥

(२०)

आपस का सब द्वेष हृदय से जरता खोवे।
भारत में सर्वत्र स्नेह का शासन होवे।
स्नेहीजन सौन्दर्य उपासक भी होजावें।
जिससे निज स्वातन्त्र्य-सत्य के फल को पावें॥

❀ पावन-परिवर्तन ❀

(१)

देरहा धोखा आंखो को
जगत का झूठा परिवर्त्तन।
देखने वालों को भी तो
नचाता माया का नर्त्तन॥

(२)

मनुज की असली आंखों पर
बंधी ही रहती है पट्टी।
ओट में हिम की टट्टी के
ज्ञान की जलती है भट्टी॥

(३)

नेत्र जो अपने हैं नकली
देख कर वे यह कहते हैं—
"सात सौ रंगों के चश्में
हमारे आगे रहते हैं" ॥

(४)

फेर में, चक्कर में पड़ कर
ओर चारों जो फिरता है—
और को, अविचल को भी वह
घूमता हुआ देखता है ॥

(५)

एक को परिवर्त्तन से दो
एक दो को नर क्यों कहता—
एक सा एक सदा रह कर
एक जब एक बना रहता ॥

(६)

कहो आया है कौन यहां
कौन है आकर कहां गया ?
लोक में वह पहले ही था
जीव जो जन्मा आज नया ॥

(७)

वनों ने वर्षाया जल वही
जलालय-गण में जो रमता।
व्यर्थ है गर्व हिमालय का
वही तो उस पर जा जमता॥

(८)

बढ़ाया है माली ने क्या
बीज को पृथ्वी में बोकर?
प्रथम ही पांचों तत्वों में
वृक्ष तो था अदृश्य होकर॥

(९)

दूर क्या घट से रज रहती
घड़ा कब मिट्टी से बचता?
प्रजापति कुम्भकार ही है
नई कुछ वस्तु नहीं रचता॥

(१०)

हड्डियां ईंटें - पत्थर हैं
मांस - लोहित हैं चूना - जल;
नसें सीमिन्ट, चर्म प्लास्टर
बने जो इनसे कई महल—

(११)

नष्ट करने ही उन सब को
मृत्यु का *स्पर्शन तेजाकर––
स्पर्श कर जाता है उनको
श्वास ले, स्वयं यहां आकर ॥

(१२)

निरञ्जन - दीपक जो इनमें
निरन्तर द्युति फैलाता है––
प्रभञ्जन - महा - वेग से भी
नहीं वह बुझने पाता है ॥

(१३)

शक्ति जो बिजली की इनमें
कान्तिमय रूप दिखाती है––
बड़े उस पॉवर - हाउस में
चली वह वापस जाती है ॥

(१४)

वहीं हैं महल और दीपक
हुआ क्या इनका फिर जगमें ?
किसी ने इसे विचारा क्या
पड़ो मत इससे इस मग में ॥

हवा ।

(१५)

वस्तु में कैसा परिवर्त्तन
दिखाई देता है पल—पल ।
एक है क्या अनेक है वह
दृष्टि में अन्तर है केवल ॥

'अमर आशा'

(१)

निर्बलों को भी सदा बलदायिनी
शक्ति मिलती दूसरी जग में कहां ?
सार कुछ भी था नहीं संसार में
आज जो आशा नहीं होती यहां ॥

(२)

लोक यह आशा-भरोसे है खड़ा
शेष का आधार भी बनती यही ।
कल्पवल्ली है यही कलिकाल में
धन्य वसुधा पर सुधा यह हो रही ॥

(३)

केन्द्र है यह कर्म का, उत्साह का
शौर्य-साहस-भूति का भाण्डार है।
गुण-गणों का गेह गौरवयुक्त यह
और यह सामर्थ्य-पारावार है॥

(४)

मानते कर्मण्यता--माता इसे
पालती जो नित्य प्राणीमात्र को।
दिव्य देवी है यही सुखकारिणी-
दीनजन को और करुणापात्र को॥

(५)

है यही जन-चित्त-चिन्ताहारिणी
भव्य भगनी है यही साफल्य की।
जन्मजन्मान्तर भुगा कर जीव को।
प्राप्ति करवाती यही कैवल्य की॥

(६)

पास में रखकर इसे सब देवता
सिद्धियां आठों अलौकिक पागए।
मानवों ने फलित आशा-वृक्ष से
सर्वदा ही ले लिए हैं फल नए॥

(७)

पा नहीं सकती स्वजीवन को कभी
जानकीजीवन विना श्रीजानकी।
जन्मती आशा यहां पर जो नहीं
वृद्धि क्या होती कभी विज्ञान की ?

(८)

कष्ट क्या इसके विना मिटता कभी
मञ्जु-मोहन प्रिय-विरह की व्याधि का।
वह न जीती, अचल आशा की भला
जो न होती राधिका आराधिका॥

(९)

जो असम्भव काम है सम्भव वही
अमर आशा-शक्ति से होजायगा।
क्या निराशावादियों को लोक में
निज मनोरथ-सिद्धि का फल पायगा ?

(०)

सत्य है आशा निराशा झूंठ है
एक दिन होगी कभी वह फलवती।
क्यों जयी होगा न आशावाद तब
साथ आशा लगरही जब बलवती॥

(११)

शोक में, आपत्ति में, दुख-दर्द में
कौन है इस चित्त को बल दे रहा ?
एक आशा ही बड़ा पतवार है
नाव को भवसिन्धु से जो खे रहा ॥

❁ रम्य राजस्थान ❁

(१)
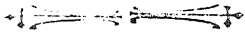
विष्णु-विचित्र-विराट-रूप ही कहलाता ब्रह्माण्ड-निधान।
ब्रह्माण्डों में माने जाते तीन लोक ही महिमावान।
इन लोकों में हरि-लीलालय भूमिलोक है श्रेष्ठ महान।
भूमिलोक में भारत अनुपम, भारत में है राजस्थान॥

(२)

पुन्यभूमि की पावनता का आदिस्रोत है यही प्रदेश।
देवपुरी को तुच्छ बताते इसे देखकर हैं देवेश।
ऐसे-ऐसे धीर-वीर-बुध जन्मे हैं इसमें मनुजेश-
जिनके गुण-गरिमा-वर्णन में भुँहकी खा जावेंगे शेष॥

(३)

कामकामिनी रति को वश में कर लेती थी जिनकी कांति ।
वही युद्ध-हित भर देती थी वैरी-मन में यम की भ्रांति ।
जिनके शोभनतम शासन में फैले रहते थे सुख-शांति ।
कभी नहीं उठती थी मनमें प्रिया प्रजा के कलुषित क्रांति ॥

(४)

प्राणिमात्र-उपकार, अहिंसा, क्षमा, दया था जिनका धर्म ।
शूरवीरता को ही सन्तत बतलाते थे जिनके कर्म ।
भली भांति आता था जिनको नीति-निपुणता का भी मर्म ।
जो जन की रक्षा करते थे वैसे ही जैसे वर वर्म ॥

(५)

कहें कहां तक उनकी महिमा थे वे ऐसे पृथ्वीपाल—
जिनके गुण गौरव-गायन से कट जाता है जग-जञ्जाल ।
राजस्थानी सतियों ने भी प्राप्त किया है सुयश विशाल ।
राजस्थान वही है जिससे भारत का है ऊंचा भाला ॥

❀ पुनीत प्रार्थना ❀

(लावणी)

अहो आपकी जन्मभूमि है भारत ही हे श्रीभगवान।
जिस पर दया नहीं दिखलाते कैसे हो प्रभु दयानिधान ॥ टेर॥

(१)

दिव्य देश की दीन दशा को कब तक देखोगे हे नाथ !
आकर आज दिखादो अपने धनुष-बाण वाले वे हाथ।
आप एकता-पाठ पढ़ाओ वंशी के वादन के साथ।
भारत पर बरसेगा जिससे जीवन-दायक वैभव-पाथ।
दो अवलम्ब विलम्ब करो मत हे जगदम्ब-नाथ श्रीमान।
अहो आपकी जन्मभूमि है भारत ही हे श्रीभगवान ॥

(२)

स्वामिन् दो इसके हाथों में स्वालम्बन का सौख्यद यंत्र।
भरदो इसके इन कानों में विश्वविजयकर–मोहन मंत्र।
हिन्दी शुद्ध रास्ट्रभाषा हो, जिसमें शब्द न हो परतंत्र।
भारत सुखी-धनी होजावे होकर के अति शीघ्र स्वतंत्र।
यही समय है आओ-आओ पछताओगे आप निदान।
अहो आपकी जन्मभूमि है भारत ही हे श्रीभगवान ॥